CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

दिसम्बर १९७४

१ रु.

संत श्री ज्ञानेश्वर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेष निवेदन

वैदिकधर्मके पाठकों तथा संरक्षकोंको यह सूचित करते हुए प्रसन्नता होती है कि आगामी अंकसे 'वैदिकधर्म' के प्रकाशनमें कुछ नवीनतायें आरम्भ हो रही हैं—

१ इसके सम्पादक रहेंगे– श्री नवीनचन्द्रजी पाल, एम. ए. विद्यालङ्कृत,

२ इसके परामर्शदाता होंगे– श्री सत्यकामजी विद्यालङ्कार, श्री शंकरदेवजी विद्यालङ्कार तथा श्री महेशचन्द्रजी शास्त्री विद्याभास्कर।

३ सन १९७५ ई. का वर्ष 'आर्यसमाज स्थापना शताब्दी' का वर्ष है। अतः 'वैदिकधर्म' अपनी अनेक विशेषताओंके साथ आर्यजगत्की सेवामें पहुंचेगा।

— व्यवस्थापक
वैदिक धर्म

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वै दि क ध र्म

वर्ष ५५ : अंक १२ : मार्गशीर्ष : २०३१

स्वामी— स्वाध्याय-मंडल, पारडी [जि. बलसाड]

संस्थापक एवं आद्यसंपादक
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
वसंत श्रीपाद सातवलेकर

श्री स्वाध्याय मंडल लायब्रेरी
पो. पारडी १/२०५, पुस्तिमाल
पारडी, जलगाव (महाराष्ट्र)

वि ष या नु क्र म णि का

卐

समृद्धिकी प्राप्ति	[वैदिक प्रार्थना]	१६९
मनुस्मृति – पर्यवेक्षण	श्री शिवपूजनसिंह कुशवाह	१७०
थाई देशमें भगवान वेदका शुभागमन	श्री सखाजीवतलाल चन्दूलाल	१७७
शूद्र	श्री भगवानराव आर्य भोसीकर	१७९
महाभारतकी समालोचना	श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर	८३ से ९०
ऋग्वेदका सुबोध भाष्य	श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर	१२१ से १२८

'वैदिक धर्म' वार्षिक मूल्य म. आ. से १२) रु.

(वी. पी. से रु. १४), विदेशके लिए रु. १६), डाक व्यय अलग रहेगा।

इस अंकमें प्रसिद्ध किये गये लेखकोंके लेखोंमेंके मतों और विचारोंसे संपादक सहमत है ऐसा नहीं है। उन लेखोंमेंके विचारोंके लिये केवल लेखकही व्यक्तिशः उत्तरदायी हैं।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिर प्रतीक्षित] [छप गया

पण्डित सातवलेकर-जीवनप्रदीप

मूल लेखक
श्री पु. पां. गोखले

अनुवादक
श्रुतिशील शर्मा

वेदमहर्षि पं. श्री. दा. सातवलेकरके जिस जीवनचरित्रकी प्रतीक्षा बहुत दिनोंसे की जा रही थी, वह अब छपकर तैय्यार हो गया है।

इस ग्रन्थमें उनके जीवनके हर पक्षको प्रस्तुत किया गया है। उपन्यासकी शैलीसे लिखा गया यह ग्रन्थ पठनीय और संग्रहणीय है।

उत्तम कागज, उत्तम छपाई, मुखपृष्ठ पर पण्डितजीका तीनरंगी आकर्षक चित्र, आकर्षक डेमी साइज, पृष्ठ– ३१५, मूल्य– १०)।

प्रतियां बहुत सीमित हैं। आज ही मंगा लें।

इस ग्रन्थ पर १५% कमीशन दिया जायेगा। आज ही अपना ऑर्डर भेजें।

स्वाध्याय मण्डल, पारडी
जि. वलसार
(गुजरात)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

समृद्धिकी प्राप्ति

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥

(अथर्व. ३-२४-५)

हे (शत-हस्त) सौ हाथोंवाले मनुष्य ! (समाहर) इकट्ठा करके ले आ । हे (सहस्र-हस्त) हजारों हाथोंवाले मनुष्य ! (सं किर) उसको फैला दे, उसका दान कर । और (कृतस्य कार्यस्य च) किये हुये कार्यकी (इह स्फातिं समावह) यहां वृद्धि कर ।

हे मनुष्य ! तू सौ हाथोंवाला होकर धन प्राप्त कर और हजार हाथोंवाला बनकर उसका दान कर । इस प्रकार अपने कर्तव्य कर्मकी उन्नति कर ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : श्री डॉ. शिवपूजनसिंह कुशवाह, एम. ए.

मनुस्मृति - पर्यवेक्षण

स्वामी सत्यप्रज्ञानन्दजी सरस्वती (पं. बुद्धदेवजी 'विद्यालङ्कार' विद्यामार्तण्ड):- 'मन हमारे अध्यात्म राज्यमें सदा यज्ञ करता चला आया है। सबसे पहला यज्ञका नमूना यही है। जिस प्रकार मन ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंको ठीक चलाता है तब कार्य सफल होते हैं। इसीका अनुकरण करके संसारके लोग भी एक मननशील विद्वान्‌को आगे करके उसके पीछे चलते हैं। इसीलिए कहा मनुष्यवत् क्योंकि यज्ञ वास्तवमें तो मनका ही कर्म है इसलिए कहा 'मनुष्यवत्' मनु देखो पृ. ५९।७।'[१७]

यहाँ स्वामी सत्यप्रज्ञानन्दजी महाराजने भी 'मनु' का अर्थ 'मननशील विद्वान्' किया है जो समीचीन है।

'मनुः मननशक्तिः' ऐसा श्री सायणाचार्यने 'ताण्ड्य ब्रा. ३।३।८।३' परके भाष्यमें लिखा है।

जो मननशक्तिसे युक्त है वह 'मनु' है। यह भी यौगिक अर्थ हुआ।

मनुस्मृतिकी अन्तःसाक्षी:-

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥
(मनु. १२।१२३)

पं. कुल्लूक भट्टः- 'एतं च परमात्मानमग्नित्वेनैके याज्ञिका उपासते। तथा 'तमेकमग्निम्' इत्यध्वर्यव उपासते। अन्ये पुनः स्रष्टृत्वात्स्रष्ट्राख्य प्रजापतिरूपतयोपासते।'

हिन्दी अनुवादः- 'इस (परम पुरुष परमात्मा) को कुछ लोग (याज्ञिक-अध्वर्यु) अग्नि, कुछ लोग (सृष्टिकर्ता) प्रजापति मनु, कुछ लोग (ऐश्वर्य सम्पन्न होनेसे) इन्द्र, कुछ लोग प्राण तथा कुछ लोग शाश्वत (सनातन अर्थात् नित्य) ब्रह्म कहते हैं।'[१८]

अब 'मनु' व्यक्ति विशेषके रूपमें:-

तैत्तिरीय संहिता (१।९४) में मिलता है- 'मनुः पुत्रेभ्यो दायंदभजत्' अर्थात्- 'मनु ने अपने पुत्रोंको अपनी सम्पत्ति दी।'

भगवद्गीता (४।१) में 'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्' वैवस्वत मनु तथा उनके पुत्र इक्ष्वाकुका नामोल्लेख है।

पं. भगवद्दत्तजी बी- ए. का विचार:- 'वैवस्वत मनु- इसका नाम शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।३ में स्मरण किया गया है + अर्थशास्त्रकार कौटल्य भी इसे मनुष्योंका प्रथम राजा स्वीकार करता है × इसके आगे वह लिखता है कि प्रजाने इसे कर देना आरम्भ किया। मनु ही दण्ड आदिकी व्यवस्थाका प्रथम चलानेवाला था।'[१९]

यास्काचार्यजी और मनुः—

दायभागके विषयमें यास्क ऋषिने मनुजीको प्रमाण माना हैः—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥
(निरुक्त ३।४)

---

१७ 'शतपथ ब्राह्मण भाष्य [प्रथम काण्ड], पृष्ठ २४४ [संवत् २०३० वि. में दयानन्द संस्थान,, १५९७ हरध्यान सिंह मार्ग, नई दिल्ली- ५ द्वारा प्रकाशित]

१८ 'मनुस्मृतिः 'मन्वर्थ मुक्तावली टीका सहित' मणिप्रभा 'हिन्दी व्याख्यासंहित, (सम्पादक पं. गोपाल शास्त्री नेने) पृष्ठ ६५८ (संवत् २०२६ वि. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, द्वितीय संस्करण)

\+ 'मनुर्वैवस्वतोराजेत्याह।'

× 'मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुर्वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। आदि राजो मनुरिव प्रजानां परिरक्षिता।'

१९ 'भारतवर्षका इतिहास' (आदि युगसे गुप्त-साम्राज्यके अन्ततक) पृष्ठ ३३ (सन् १९४० ई. में लेखक द्वारा वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट साउथ टाउन, लाहौर द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पं. चन्द्रमणिजी 'विद्यालंकार' पालीरत्नः– 'बिना किसी भेदके साम.न्यतः स्त्री-पुत्र 'दोनों पुत्रोंका धर्मानुसार दायभाग होता है– यह सृष्टिकी आदिमें स्वायम्भुव मनुने कहा है।'[२०]

पुनः– 'स्वायम्भुव मनु सृष्टिके आदिमें पहला मनु हुआ है, उसके बाद स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष यह पांच मनु और हो गये हैं, सातवां मनु वैवस्वत था जिसके नामसे मनुस्मृति अत्यन्त प्रसिद्ध है। उस सातवें मनुने भी अपने स्मृति–ग्रन्थमें 'यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समः। तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्' (९।१३०) यह वचन कहा है'[२१]

इसी प्रकार मनुस्मृति अ. ९ श्लोक १३६, १३९ में भी पोता व बेटीमें भेद नहीं किया गया है। दोनों ही दाय भागके अधिकारी हैं।

पं. भगवद्दत्तजी बी. ए.– 'अविशेषसे = बिना भेदभावके पुत्रोंका = बालक, बालिकाका दाय [में भाग] होता है, धर्मानुसार बालक, बालिकाके जोड़ेका। (वि + सर्गादौ) अवान्तर प्रलयके पश्चात् युगके आदिमें मनु [जो] स्वयम्भू= ब्रह्माका पुत्र, बोला।

भाष्य– स्वायम्भुव मनु सृष्टिके आदिमें भी था। और वही नाम बार बार रखा जानेसे विसर्गके आदिमें भी इस नामका ऋषि हुआ। विसर्गका अर्थ है। अवान्तर प्रलयके पश्चात्। उसका धर्मशास्त्र अति विशाल था। वह लोक भाषामें, पर पाणिनिसे बहुत पूर्वकी लोकभाषामें था। वेदके साथ ही व्यावहारिकी भाषाका प्रयोग होने लगा था।...

मनुके उसी विशाल शास्त्रका अतिसंक्षिप्त और कतिपय प्रक्षेपवाला यह वर्तमान भृगुप्रोक्त शास्त्र है। इसको ईसाके आसपासकी रचना कहना। इतिहास विरुद्ध है। यास्कने परम आदर भावसे यह श्लोक उद्धृत किया है।'[२२]

आचार्य पं. श्रीभगीरथ शास्त्रकृत '(मिथुनानाम् पुत्राणाम्) स्त्री पुरुष दोनोंही प्रकारके अपत्योंका (अविशेषेण) समान रूपसे (धर्मतः) धर्मानुसार (दायः भवति) दाय है दोनोंही अधिकारी हैं। यह बात (विसर्गादौ) सृष्ट्यारम्भमें (स्वायम्भुवः मनुः) मनुने (अब्रवीत्) कही है।'[२३]

अतः यास्ककी दृष्टिमें 'मनुस्मृति' प्रामाणिक है इसलिए उन्होंने उसका उद्धरण प्रस्तुत किया है।

'महाभारत' और 'मनु':— महाभारतमें मनुका २४ बार उल्लेख आया है। १६ में केवल 'मनु' नाम, १ में 'प्राचेतस् मनुके विचार राजधर्मके सम्बन्धमें, ७ में स्वायम्भुव मनुके स्मृति–सम्बन्धी उद्धरण आए हैं।

'श्रीमद् भगवद्गीता' में चार बार 'मनु' की चर्चा है।

वर्तमान सृष्टिके लिए मनुस्मृति मनु द्वारा घोषित विधि–संहिता है। श्री पं. मेधातिथिने अपने 'मनुस्मृति भाष्य' के प्रारम्भमें मनुके सम्बन्धमें लिखा है—

मनुर्नाम कश्चित् पुरुष विशेषोऽने कवेदशाखाऽध्ययन विज्ञानानुष्ठान सम्पन्नः स्मृति–परम्परा प्रसिद्धः।

अर्थात्– 'मनु कोई पुरुष विशेष था जो वेदोंकी अनेक शाखाओंको पढ़कर धर्मानुष्ठान तथा स्मृति–परम्पराके लिए प्रसिद्ध हो गया।'

मनुस्मृतिका कर्ता कौन ?

क्या प्रचलित मनुस्मृतिके कर्त्ता मनुजी ही हैं ? कुछ लोगोंका विचार है कि मनुस्मृतिमें मनुके विचार हैं, मनुके शब्द नहीं। जिसको लोग मनुस्मृति कहते हैं उसका नाम 'भृगु संहिता' है। कहते हैं कि भृगु और उनके शिष्योंने इसको श्लोक बद्ध किया। मनुस्मृतिमें भी लिखा है—

"एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः॥ ५९॥
ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः।
तानब्रवीदृषीन् सर्वान् प्रीतात्मा श्रूयतामिति॥६०॥"
[मनुस्मृति अ० १]

अर्थ ये भृगु मनु यह सम्पूर्ण शास्त्र आप लोगोंको सुनावेंगे; (क्योंकि) भृगुने इस सम्पूर्ण शास्त्रको मुझसे प्राप्त किया

---

२० 'वेदार्थ–दीपक निरुक्त भाष्य' पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १६८

२१ वही, पृष्ठ १६८–१६९.

२२ 'निरुक्त शास्त्रम्, भाषार्थ तथा भाषाभाष्य, पृष्ठ १४७–१४८ [संवत् २०२१ वि में श्री रामलाल कपूर निक्षेपनिधि (ट्रस्ट) अमृतसर द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण.]

२३ 'निरुक्तम्' पृष्ठ ११९–१२० [सन् १९६३ में मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, संस्कृत पुस्तकाल्य, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, २७३६ कूचा चेलां, दरियागंज, दिल्ली ६ द्वारा प्रकाशित]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है ॥ ५९ ॥ स प्रकार मनुसे आदेश प्राप्त किए हुए भृगुमुनिने प्रसन्नचित्त होकर उन महर्षियोंसे कहा-सुनिए ॥ ६० ॥ "

इन दोनों श्लोकोंको विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं। वास्तवमें इन श्लोकोंके आगे-पीछेके जो श्लोक हैं उनका मिलान करनेसे यह निश्चय करना कठिन है कि यह संहिता भृगुकी ही बनाई हुई है।

'मनुस्मृति' आजकल जिसरूपमें मिलती है कोई नवीन पुस्तक नहीं है।

महर्षि पातञ्जलिने अपने 'महाभाष्य' में पाणिनिऋषिके 'एकः पूर्वपरयोः' (अष्टा० ६।१।८४) सूत्रपर भाष्य करते हुए एक श्लोक दिया है—

'ऊर्ध्वं प्राणात्मुत्क्रामन्तियूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते।'

यह श्लोक ज्योंका त्यों 'मनुस्मृति' (अ० २ श्लो. १२०) में मिलता है। यद्यपि महाभाष्यमें 'मनु' का नाम नहीं है। परन्तु प्रतीत तो ऐसा ही होता है कि मनुस्मृतिका ही उद्धरण है।

श्री आद्यशङ्कराचार्यजीने अपने 'वेदान्तदर्शन भाष्य' में मनुस्मृतिके बहुतसे श्लोकोंका उल्लेख किया है। वेदान्तदर्शन ३।१।१४ 'स्मरन्तिच' सूत्रकी व्याख्यामें वे लिखते हैं:—

'मनु व्यास प्रभृतयः शिष्टाः।'[२४]

अर्थात् 'मनु, व्यास आदि शिष्ट पुरुषोंके कथन स्मृतिके अन्तर्गत आते हैं।

श्रीकुमारिलभट्टने 'मन्वर्थमुक्तावली' में 'मनुस्मृति' के पहले अध्यायके पहले श्लोककी व्याख्या करते हुए बृहस्पतिके श्लोक दिए हैं।

'अपरार्क' ने 'याज्ञवल्क्य स्मृति' के श्लोक २।२१ की व्याख्या करते हुए भी प्रथम श्लोकका उद्धरण दिया है।

'अश्वघोष' की 'वज्रसूची' में 'मानवधर्म' से कई श्लोक लिए गए हैं जो वर्तमान मनुस्मृतिके ही है।

अतः मनुस्मृति' के कर्त्ता 'मनु' जी ही थे।

मनुस्मृतिके कालः— मेधातिथि (९ वीं शती) एवं विश्वरूपने मनुस्मृतिका जो स्वरूप दिया है वह आज भी उपलब्ध है। बृहदारण्यकोपनिषद् (१।४।१७) में मनुका मत मिलता है। 'मृच्छकटिक' (९।३९) में मनुके आदेश पर निर्णय होता है। 'पांचवी शतीके आसपासके वल्लभी आदि शिलालेखोंमें मनुके आदेशपर निर्णय होता है।'[२४]

बृहस्पतिने मनुके लिए लिखा है कि वेदसे अधिक निकट होनेसे मनुका सर्वाधिक प्रामाण्य है।'[२५]

इन उद्धरणोंसे इतना तो सिद्ध होता है कि द्वितीय शताब्दीतकके ग्रन्थोंमें मनुस्मृतिका उद्धरण दिया गया हैं।

पं० भगवद्दत्तजी बी. ए. का मतः— 'अतः वर्तमान मनुस्मृतिको ईसाकी प्रथम शतीमें मानना ठीक नहीं। अपितु मनुस्मृतिके वर्तमान पाठमें भी शतशः प्रयोग पाणिनिसे पूर्वकालकी लोक भाषाके है। वे प्रयोग बताते हैं कि वर्तमान मनुस्मृति भी अति प्राचीन ग्रन्थ हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि पाश्चात्योंका कथित भाषा-विज्ञान अधिकांश असत्य है।'[२६]

पं. भगवद्दत्तजी बी. ए. ने बार्हस्पत्य अर्थसूत्रकी भूमिकामें लिखते हैं कि 'धम्मपद' लगभग चौथी शताब्दी ई. पू. में लिखा गया था उसमें दो श्लोक थोडेसे परिवर्तनके साथ मनुस्मृतिके श्लोकोंके अनुसारही है।[२७]

मनुस्मृति

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ॥
(२।१२१)

न तेन वृद्धो भवति येनास्यपलितं शिरः।
यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥
(२।१५६)

धम्मपद

अभिवादन शीलस्य निच्चं वदाढ्यायिनो
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वर्णा सुखं बलं
॥ १०९ ॥ सहस्सवग्गो

न तेन थेरो येन स्सफलितं सिरो परिपक्को
वयोजस्स मोघं जिण्णोति वुच्चति ॥ २०६
धम्मट्ठवग्गो

---

२४ 'ए. इं. जिल्द ८, पृष्ठ ३०३, जिल्द ४, पृष्ठ १०५.
२५ मनुस्मृति १।१ पर पं. कुल्लूक भट्ट द्वारा उद्धृत बृहस्पतिवचनम्।
२६ 'भारतवर्षका वृद्ध इतिहास' द्वितीय भाग, पृष्ठ २९ [संवत २०१७ दिल्ली, प्रथम संस्करण]
२७ 'Barhaspatya Sutra' Editedby Dr. F. W. Thomas, the Devanagari text prepared from hisedition (in Roman Script) 1921 Intro. p. 5. तुलना करो. डा. लक्ष्मीदत्त ठाकुर कृत 'प्रमुख स्मृतियोंका अध्ययन' पृष्ठ २५ [सन् १९६५ में हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है :-

(१) वर्तमान मनुस्मृतिका स्वरूप ई. द्वितीय शताब्दी पूर्व तकका हो सकता है इसे अब विशिष्ट विद्वानोंने मान लिया है।

(२) श्री डा. काशी प्रसाद जायसवालने यह सिद्ध कर दिया है कि उसकी सीमा ईसवीसन्से पूर्वही है।

(३) श्री जायसवालजीने 'हिन्दू पौलिटी' (Hindu Polity) पृष्ठ २३५–२३९ में पुष्यमित्र आदि शुंगवंशीय राजाओंके कालमें सिद्ध किया है परन्तु डा. लक्ष्मीदत्त ठाकुर[२८] व श्री वरवाचार्यजी व श्री आचंगरने इस मतका प्रबलरूपसे खण्डन कर दिया है।

(४) श्री आयंगरजी उसे कौटिल्यसे पूर्वका सिद्ध करते हैं परन्तु यह लिखते हैं कि कमसे कम द्वितीय ईसवी शताब्दी से पूर्वका होना निर्विवाद है।

(५) मनुस्मृतिने यास्कका उल्लेख नहीं किया है परन्तु यास्कने मनुका उल्लेख किया है। श्री काणेके अनुसार यास्कका काल ८०० ई. के है। श्री भंडारकरके अनुसार ७५० ई० पू० तथा आयंगरजीके अनुसार ६५० ई० पू० है। यास्कने मनुका कई स्थानोंपर उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुके धर्मशास्त्र की स्थिति यास्कके पूर्व थी।

(६) पं. भगवद्दत्तजी बी. ए. ने निश्चित तिथि नहीं दी है परन्तु वे उसे कौटिल्यसे तथा धम्मपदसे पूर्व की मानते हैं। धम्मपदकी रचना वे लगभग चौथी शताब्दी ई० पू० मानते हैं। अतः इनके मतसे मनुस्मृतिका काल उससे भी पूर्वका सिद्ध होता है। उन्होंने मनुस्मृतिकी रचना रामायणसे पूर्व मानी है। ऐसी स्थितीमें अनायासही मनुस्मृतिकी रचना-काल ई. छठी या पांचवी शताब्दी पूर्व हो जाता है। यही मत मैसडंकर महोदयका मनुस्मृतिकी रचनाका काल इससे भी पूर्व हो सकता है।

अतः 'मनुस्मृति' प्राचीन है।

मनुस्मृतिकी श्लोक संख्या– 'शान्तिपर्व (५८–८०-८५) ने बताया है कि किस प्रकार ब्रह्माने धर्म, अर्थ, एवं काम पर एक लाख अध्याय लिखे और वह महाग्रन्थ कालान्तकमें विशालाक्ष 'इन्द्र, बाहुदन्तक, बृहस्पति एवं काव्य (उशना) द्वारा क्रमसे १०, ०००, ५, ०००, ३, ००० एवं १, ००० अध्यायोंमें संक्षिप्त किया गया। नारद- स्मृतिमें आया है कि मनुने १, ००, ००० श्लोकों, १०८० अध्यायों एवं २४ प्रकरणोंमें एक धर्मशास्त्र लिखा और उसे नारदको पढाया जिसने उसे १२, ००० श्लोकोंमें संक्षिप्त किया और मार्कण्डेयको पढाया। मार्कण्डेयने भी इसे ८, ००० श्लोकोंमें संक्षिप्त कर सुमति भार्गवको दिया, जिन्होंने स्वयं उसे ४, ००० श्लोकोंमें संक्षिप्त किया।...

वर्तमान मनुस्मृतिमें १२ अध्याय एवं २६९४ श्लोक हैं[२९]

चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'मनुस्मृति' श्री कुल्लूक भट्ट प्रणीत 'मन्वर्थ मुक्तावली' टीकामें १२ अध्याय श्लोक २६८४ ही हैं– देखिए—

अध्याय	श्लोक संख्या	प्रक्षिप्त श्लोक
१	११९	११
२	२४९	११
३	२८६	२१
४	२६०	१९
५	१६९	२२
६	९७	६
७	२२६	१६
८	४२०	३०
९	३३६	६
१०	१३१	२
११	२६५	१४
१२	१२६	१२
	२६८४ +	१७०

इस प्रकार श्रीकाणे और पं. कुल्लूक भट्टकृत टीकामें १० श्लोकोंका अन्तर है। पं. कुल्लूक भट्टकी टीकामें १७० श्लोक प्रक्षिप्त है जब कि पं. हरगोविन्द शास्त्रीने अपनी

---

२८ वही पृष्ठ १७–१८

२९ 'धर्मशास्त्रका इतिहास' प्रथम भाग (श्रीकाणेकृत) पृष्ठ ४२–४३.

+ तुलना करो. सन् १९४६ ई. में निर्णयसागर मुद्रण अग्रालय २६–२८ कोलभट्ट स्ट्रीट, बम्बई द्वारा प्रकाशित, दशम संस्करण मनुस्मृति पर श्री कुल्लूक भट्ट कृत टीका। पं. हरगोविन्द शास्त्री, व्याकरण साहित्याचार्य कृत 'मनुस्मृति सविमर्श' मणिप्रभा' हिन्दी टीका, (सन् १९६५ ई. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, द्वितीय संस्करण)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

टीकामें १७५ प्रक्षिप्त श्लोकोंकी सूची दी है। ये तो पौराणिकोंके विचार हैं।

आर्यजगत्के प्रसिद्ध विद्वान्, सामवेद भाष्यकार पं. तुलसीरामजी स्वामीने भी २६८४ श्लोकोंकी टीका की है परन्तु वे टीकाके साथ २ ही प्रक्षिप्त श्लोकोंको भी बतलाते गए हैं। पं. हरिश्चन्द्र विद्यालंकार भी प्रायः २६८४ श्लोक मानते हैं। अतः बीकाणे की संख्या अशुद्ध प्रतीत होती है।

'मनुस्मृति' में परस्पर विरोधी मतः— ब्राह्मणको शूद्राके साथ विवाहका विधान (मनु. ३-१२-१३) और निषेध (मनु. ३-१४-१९) दोनों है। एक स्थान पर नियोगका समर्थन (मनु. ९-५९-६३) है और दूसरे स्थान पर उसे पशुधर्म (मनु. ९-६४-६८) कहा गया है। श्राद्ध एवं मधुपर्कमें मांसका विधान (मनु. ५-३१, ३२, ३५, ३९, ४१) है और सर्वत्र मांस- प्रयोगका निषेध (मनु. ५-४८-५०) है। एक श्लोकमें पिता आचार्यसे श्रेष्ठ और दूसरेमें आचार्य पितासे श्रेष्ठ (मनु. २-१४५) कहा गया है।

स्पष्ट लेषः मनु. ३-६८ में गृहस्थके पांच ऐसे पातकोंका उल्लेख है जो प्रत्येक गृहस्थीको बिना जाने-बूझे करने पडते हैं जैसे चूल्हा, चक्की, झाडू ओखली और जलका घट इनके प्रयोगसे छोटे छोटे कीडे दबकर मर जाते हैं।

इन दोषोंको मिटानेके लिए दैनिक प्रायश्चितके रूपमें (मनु. ३-६९,७०) में पञ्चमहायज्ञ करनेका उल्लेख है।

मनुस्मृति कहती है कि 'नृयज्ञ' का अर्थ 'अतिथि पूजन' है फिर भी लोग 'यज्ञ' हिंसापरक समझने लगे। 'यज्ञ' को निघण्टुमें 'अध्वर' कहा गया है। 'अ' नहीं, 'ध्वर' में हिंसा = हिंसारहित इससे प्रतीत होता है कि 'यज्ञ' हिंसारहितही होना चाहिए। 'बाले' का अर्थ 'भूतयज्ञ' है अर्थात् चींटी, कौवे आदिको भोजन पहुँचाना। इसीलिए पितृयज्ञमें पशुहिंसाका विधान स्पष्टतया पीछेकी मिलावट है। यज्ञमें पशुहिंसा वाममार्गका सिद्धान्त है, वैदिक मत नहीं है।

श्राद्ध व तर्पण— 'पितृयज्ञस्तुतर्पणम्।' (मनु. ३।७०)

'पितृयज्ञ' को तर्पण कहते हैं। पौराणिक यह समझते हैं कि तर्पण मृत पितरोंको पानी देनेका नाम है। मनुजीके इस श्लोकसे तो 'मृतपितरों' को गंध नहीं पाई जाती। इसी श्लोकका भाष्य करते हुए पं. कुल्लूकभट्ट लिखते हैं—

'अन्नाद्येनोदकेन वा' (३।८२) इति तर्पणं वक्ष्यति स पितृयज्ञः' = अन्न और पानी देनेको तर्पण कहते हैं वही पितृयज्ञ है। भाष्यमें 'वक्ष्यति' (आगे कहेंगे। लिखा है। वह श्लोक यह है—

'कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयो मूल फलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।
(मनु० ३।८२)

अर्थात् 'पितरोंको प्रीतिपूर्वक बुलाकर अन्न, जल, दूध मूल, फलसे प्रतिदिन श्राद्ध करे।'

जीवित पितरोंकोही प्रतिदिन बुलाकर श्रद्धापूर्वक उनकी अन्नजलादिसे सेवा कर सकता है, मृत पितरोंको नहीं। इन दोनों श्लोकों और पं. कुल्लूकभट्टकी टिप्पणीको देखकर प्रतीत होता है कि जिसको 'तर्पण' कहते हैं वही श्राद्ध है।

मनु० ३।८३ श्लोक पीछेसे मिलाए गए हैं।

'मनुस्मृति' के भाष्यकारः—

'मनुस्मृति' पर असहाय, देवस्वामी, भर्तृयज्ञ और भागुरिके भाष्यके[३०] असहायकी मनुटीकाकी और 'सरस्वती विलास', 'विवादरत्नाकर' और 'मेधातिथि' संकेत करते हैं। असहायका काल सप्तम शताब्दी ई० पू० रखा जा सकता है।

मेधातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूक भट्ट, धरणीधरपण्डित, सर्वज्ञनारायण, राघवानन्द, रामानन्द, प्रसिद्ध भाष्यकार हैं।

मेधातिथिका भाष्य कलकत्तेसे मोद संस्करण प्रकाशित हुआ है।

आधुनिक टीकाकारः— विद्यावारिधि पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र, मुरादाबादकी हिन्दी टीका श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बईसे प्रकाशित हुआ था।

पं. कुल्लूकभट्टका संस्कृतभाष्य व हिन्दी अनुवाद इस समय भी प्राप्य है। पं० श्री हरगोविन्द शास्त्री, साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य कृत मनुस्मृतिकी 'मणिप्रभा' हिन्दी टीका वाराणसीसे प्रकाशित है।

आर्यसमाजी विद्वानोंकी हिन्दी टीकायें— महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी, पं० राजारामशास्त्री, पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम०ए०, पं० चन्द्रमणिजी विद्यालङ्कार, पालीरत्न, पं० सत्यकामजी सिद्धान्तशास्त्री, एम० ए०, स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती, प० मुन्शीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी); श्री ईश्वरीप्रसादजी 'प्रेम' एम० ए०; पं० तुलसीरामजी स्वामी, पं० हरिश्चन्द्रजी 'विद्यालङ्कार'; पं० भीमसेन शर्मा (संस्कृत व हिन्दी भाष्य); पं० देवदत्तशास्त्री

३० पं. भगवद्दत्तजी बी. ए. कृत 'भारतवर्षका बृहद् इतिहास' द्वितीयभाग, पृष्ठ २९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पं० गङ्गा प्रसाद उपाध्याय एम० ए० की कतिपय अनधिकार चेष्टा–

पं० गङ्गा प्रसाद उपाध्याय एम. ए. का 'मनुस्मृति' [भूमिका और हिन्दी अनुवादसहित शुद्ध, परिष्कृत संस्करण] कला प्रेस, इलाहाबादमें मुद्रित व प्रकाशित है। पुस्तक किस संवत्, सन्में मुद्रित हुई, कौनसा संस्करण है इसका कोई उल्लेख नहीं है; पर यह प्रथम संस्करही है। १४९ पृष्ठकी भूमिका है।

आपने इसमें मनमाने ढंगसे श्लोकोंका कतर-ब्योंत किया है। जिन श्लोकोंको महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीने माना है उनको भी आपने अपने परिष्कृत संस्करणमें नहीं माना है और निकाल दिया है। यह धींगामुश्ती नहीं तो क्या है ? देखिए:–

'आपो नाश इति...' (मनु० १।१०) सत्यार्थ प्रकाश, समु० १

'यमान् सेवेत...' (मनु० ४।२०४) सत्यार्थ प्र० समु० ३

'वैश्वदेवस्य सिद्धस्य...' (मनु० ३।८४) सत्यार्थ प्र० स० ४

'...स्विष्टकृते...' (मनु० ३।८६) सत्यार्थ प्रकाश समु० ४

'...भूतग्रामं चतुर्विधम्...' (मनु० ३।९०) सत्यार्थ प्र० समु० ४

'...तामनेन विधानेन निजो...' (मनु० ९।६९) सत्यार्थ प्र० समु० ४

'वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे...' (मनु. ९।८१) सत्यार्थ प्र. समु. ४

'प्राणायामा ब्राह्मणस्यत्रयोऽपि...' (मनु. ६।७०) स. प्र. स. ५

'उच्चावचेषु भूतेषु ...' (मनु. ६।७३) स. प्र. स. ५

'अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव...' (मनु. ६।७५) सत्यार्थ प्र. स. ५

'एषवोऽभिहितो धर्मो...' (मनु. ६।९७) स. प्र स. ५

'त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं...' (मनु. ७।४३) स. प्र. स. ६.

'आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम्...' (मनु. ७।२०४) स. प्र. स. ६.

'यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते... (मनु. ८।९६) स. प्र. स. ६.

'उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ...' (मनु. ८।१२५) स. प्र. स. ६.

'येन येन यथाङ्गेन...' (मनु. ८।३३४) स. प्र. स. ६

'कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो...' (मनु. ८।३३६) स. प्र. स. ६.

'ब्राह्मणस्य चतुःषष्टि...' (मनु. ८।३३८) स. प्र. स. ६.

'अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य...' (मनु. ८।३३७) स. प्र. स. ६.

'ऐन्द्रं स्थानमभि...' (मनु. ८।३४४) स. प्र. स. ६.

'वाग्दुष्टा...' (मनु. ८।३४५) स. प्र. स. ६.

'भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री...' (मनु. ८।३७१) स. प्र. स. ६.

'पुमांसं दाहयेत्पापं शयने...' (मनु. ८।३७२) स. प्र. स. ६.

'अहन्यहन्यवेक्षेत...' (मनु. ८।४१९) स. प्र. स. ६.

'सर्वे ते दस्यव स्मृताः' (मनु. १०।४५) स. प्र. स. ८.

'देवत्वं सात्त्विका यान्ति...' (मनु. १२।४०) स. प्र. स. ९

इसी प्रकार मनु. १२ श्लो. ४२; ४३, ४४; ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०,) स. प्र. स. ९

'अभक्ष्याणि द्विजातीनाम्...' (मनु. ५।५) स. प्र. स. १०

इस प्रकार ३६ श्लोकोंको महर्षि दयानन्दजीने शुद्ध मानकर 'सत्यार्थ–प्रकाशमें' में स्थान दिया है पर उपाध्यायजीने उनको नहीं माना है। क्या उपाध्यायजी महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीसे अधिक विद्वान् थे ? अपने मान्य आचार्यजी की उन्होंने क्यों उपेक्षा की यह तो वही जानें।

स्वामी श्रद्धानन्दजीने 'वेदानुकूला संक्षिप्त मनुस्मृतिः' संवत् १९६६ वि. में गुरुकुलकाङ्गड़ीसे प्रकाशित करवाई थी। यह गुरुकुलके विद्यार्थियोंके उपयोगार्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वतीकी 'मनुस्मृति (सरल भाषा टीका)' संवत् २०१५ वि. में पुस्तक मन्दिर, मथुरा द्वारा प्रकाशित है, द्वितीयावृत्ति है। यह टीका वैदिक दृष्टिकोणसे अच्छी नहीं है।

पं. तुलसीरामस्वामीने 'मनुस्मृति' का हिन्दी अनुवाद सन् १९१२ ई में प्रकाशित किया था। स्वामीजीने प्रक्षिप्त श्लोकोंको अलग न करके अनुवाद कर दिया है पर ब्राईकेटमें उनको प्रक्षिप्त लिख दिया है। यह पद्धति अच्छी नहीं है।

पं. चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पालीरत्न की 'आर्ष 'मनुस्मृति' भास्कर प्रेस, देहरादूनसे प्रकाशित हुई थी। इसकी द्वितीयावृत्ति मेरे सामने है। आपने उन्हीं श्लोकोंको लिखा है जिनको महर्षि दयानन्दजीने माना है।

पं. सत्यकाम सिद्धान्त शास्त्री, एम. ए. द्वारा सम्पादित 'वैदिक मनुस्मृति' (टीका सहित) सन् १९६० ई. में वेहाती पुस्तक भण्डार, चावडी बाजार, दिल्ली ६ से प्रकाशित है। इसका तृतीय संस्करण मेरे सामने है। आपने महर्षि दयानन्दजीके माने हुए श्लोकोंको ही दिया है।

पं. हरिश्चन्द्रजी 'विद्यालङ्कार' कृत 'मनुस्मृति (संम्पूर्ण मूल संस्कृत और आर्य भाषानुवाद तथा टिप्पणियों-सहित) वि. संवत् २०१६ में वैदिक धर्मशास्त्र प्रकाशन संस्था, दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। आपने किसी श्लोकको नहीं निकाला है वरन् सभी श्लोकोंकी टीका कर दी है, प्रक्षिप्त श्लोकों पर टिप्पणी दी है। यह पद्धति अच्छी है।

इसप्रकार 'मनुस्मृतिका सर्वेक्षण' पूरा हुआ।

दैवत-संहिता

सम्पादक— म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर

वेदोंमें पूजक ऋषियोंकी अपेक्षा पूजनीय देवोंकी प्रधानता है। क्योंकि उपासककी अपेक्षा उपास्यकी मुख्यता सर्वत्र होती है। उपासक उपास्यके गुणोंको अपने अन्दर लाकर तद्वत् बनना चाहता है। वेदोंमें भी ऋषि उपासक हैं और देवता उपास्य। ऋषिगण अल्पगुणान्वित हैं और देवता सर्वगुणान्वित। ऋषिगण देवताओंके गुण अपने अन्दर धारण करना चाहते हैं और देवसदृश बनना चाहते हैं। इस प्रकार देवोंका स्थान मुख्य है।

ये देवता संस्थामें अनेक हैं, पर उनके मन्त्र चारों वेदोंमें बिखरे पडे हैं। अग्निके कुछ मन्त्र ऋग्वेदके १ मण्डलके १ सूक्तमें आए हैं, तो कुछ मन्त्र उसके २४ वें सूक्तमें आए हैं। इसी प्रकार इन्द्रादि देवोंके मन्त्रोंकी भी अवस्था है।

इस संहितामें देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका मन्त्रसंग्रह है। इन्द्रके चारों वेदोंमें जितने मन्त्र आए हैं, उन सबका एक जगह संग्रह कर दिया है। इसी प्रकार अन्य देवोंका भी किया है। इससे वेदका अध्ययन करनेवालोंको बडी सुविधा होगी। उन्हें चारों वेदोंको खरीदनेकी कोई आवश्यकता नहीं। १७ पृष्ठोंमें उत्कृष्ट भूमिका युक्त आकर्षक छपाई, आकर्षक जिल्द। डबलक्राऊन ८ पेजी साइज, भूमिका १७ पृष्ठ, १०४८ पृष्ठ मूल्य ३०) (डा. व्य. पृथक्)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो. 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : श्री सदाजीवतलाल चन्दूलाल

थाई देशमें भगवान वेदका शुभागमन

'इस अत्यन्त प्राचीन देश, श्यामदेशमें, जो सप्त वैदिक ऋषियोंमेंसे एकका देश था, भगवान वेदका शुभागमन हुआ है! महान वैदिक वामदेव ब्राह्मण-कुलके वंशज होनेके नाते, मैं प्राचीन ज्ञान और श्रुतिके इस दीर्घकालसे लुप्त भण्डारका स्वागत करते हुए अत्यन्त प्रसन्न हूँ।

इन भावविह्वल शब्दोंमें, तथा सजल नेत्रोंसे थाईदेशके नरेश अतुल्यतेज भूमिपाल राम नवम्के राजगुरू वामदेवने १९ की दुपहरको भारतीय राजदूत महामहिम श्री रमेश भण्डारीके करकमलोंसे गुरू गंगेश्वर चतुर्वेद संस्थान तथा भारतके महामंडलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्द द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय वेद मिशनकी ओरसे पवित्र वेदोंकी प्रतियोंकी भेंट स्वीकार करते हुए अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये।

९४-वर्षीय प्रज्ञाचक्षु (पांचवे वर्षसे अंधावस्थाको प्राप्त) परमपूज्य स्वामी श्री गंगेश्वरानन्द, जो प्रख्यात उदासीन सम्प्रदायके १८२ वें धर्मगुरू हैं, आजकल दक्षिण-पूर्वी एशियाकी यात्रा कर रहे हैं- हिन्दुओंके सर्वाधिक पवित्र ग्रन्थ वेदोंका प्रचार करने तथा उनकी प्रतियां भेंट करनेके उद्देश्यसे। स्वामीजीके साथ उनके दो शिष्य स्वामी गोविंदानंद और श्रीमती रतन फौजदार तथा विश्व हिन्दू परिषदके सचिव श्री दादा आपटे हैं। अपनी इस यात्राके दौरान, जो विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आयोजित की गयी थी, यह दल १६ को शामको बंगकोक आया।

स्वामीजीके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप, पहलीबार चारों वेदोंका संकलन और प्रकाशन १००० पृष्ठोंके एक विशाल ग्रन्थमें हुआ है। १५"×२०" आकारके, विशेष रूपसे निर्मित आर्ट-पेपर पर इस ग्रन्थका मुद्रण हुआ है। इस अद्वितीय, पवित्र ग्रन्थमें संस्कृतके २०,००० से अधिक मंत्र हैं। कलात्मक किनारों पर, वैदिक-यज्ञोंमें प्रयुक्त होनेवाले विविध उपकरणों और पोतोंको चित्रांकित किया गया है। एक ग्रन्थके रूपमें सुबद्ध इस पवित्र ग्रन्थका भार २२ किलो है। जहां तक मेरी जानकारी है यह ग्रन्थ सर्वाधिक विशाल, भारवाला ग्रन्थ तो है ही असंदिग्ध रूपसे मानवताका प्राचीनतम ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रन्थ भी है।

नेपाल समेत भारतमें ६०८ स्थानोंपर इस ग्रन्थको प्रतिष्ठापित करनेके बाद, स्वामी गंगेश्वरानन्द आज पूर्वकी यात्रा कर रहे हैं। इस यात्राके बाद, वे पश्चिमकी यात्रा करेंगे, विश्वभरमें वेदोंकी प्रतिष्ठापना करनेकी अपनी सद्-योजनाको क्रियान्वित करनेके क्रममें।

यहांके राजगुरू वामदेव मन्दिरमें, ब्रह्मांडके सृजक ब्रह्म-देवको सब देवताओंमें अग्रणी दिखाया गया है। इस अर्थ-गर्भित स्थितिका उल्लेख करते हुए, स्वामीजीने वेदोपहार-समारोहके अवसर पर दिये गये भाषणमें कहा, 'यहांके अधिष्ठाता देवता ब्रह्मदेव हैं। उनके मनमें यह विचार अवश्य होगा, 'वेद मेरे ज्ञान भण्डार हैं, और मुझे उनकी पुनर्प्राप्ति अवश्य होनी चाहिए।' मुझे लगता है कि यहां आकर उन्हें वेदोंको अर्पण करनेकी प्रेरणा मुझे स्वयं उन्होंने ही दी है। मुझे इस बातकी अत्यन्त प्रसन्नता है कि विश्वभरमें वेदोंके प्रचारकी अपनी योजनाका शुभारम्भमें ब्रह्मदेवके आशीर्वादके साथ कर रहा हूँ।'

वेदविहीन ब्राह्मण

स्वामीजीके भाषणका कृतज्ञतापूर्ण उत्तर देते हुए राज-गुरूने कहा, 'यहां रहनेवाले हम ब्राह्मणोंको यह कष्टदायक अनुभूति थी कि हमारे पास हमारी सर्वाधिक मूल्यवान सम्पत्ति-पवित्र वेद नहीं हैं। पवित्र ज्ञानकी इस पारिवारिक निधिको प्राप्त करते समय मुझे जिस अपार हर्षकी अनुभूति हो रही है, उसे मैं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। यहां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैं यह कहना आवश्यक समझता हूँ कि हम अपने सब धार्मिक कृत्य तथा कर्मकाण्ड वैदिक परम्पराओंके अनुसार ही करते हैं। पर हमारे पास केवल यजुर्वेद और सामवेदके थोडेसे मंत्र हैं। इनके सहारे ही हम अपनी सब धर्मविधियां सम्पन्न करते आ रहे हैं। अब अपनी जनश्रुति और परम-विद्याकी इस अमूल्य निधिको प्राप्त करके मुझे लग रहा है जैसे स्वयं परमात्माने अपनी दिव्य ज्योति और अक्षय सच्चिदानंदके साथ मेरे घरको पवित्र किया है।'

इन रोमहर्षक और भावभीने शब्दोंके साथ राजगुरुने पवित्र वेदको परम्परागत हिन्दू पूजनविधि, शंखध्वनि, मृदंग-वादन तथा घंटियोंके गुंजायमान स्वर, के साथ ब्रह्मदेवकी मूर्तिके सामने प्रतिष्ठापित किया।

प्रातःकालमें किसी बौद्ध-विद्वत्परिषदमें सम्भवतः प्रथम-बार, वेदोंका प्रतिष्ठापन किया गया। इस शुभावसर पर पूर्वी बौद्ध विश्वके धर्माधिकार-वर्गमें द्वितीय स्थान-प्राप्त उप संघराजने भी अपनी उपस्थितिसे समारोहको गरिमा प्रदान की। उन्होंने स्वामी गंगेश्वरानंदकी ओरसे भारतीय राजदूतसे वेदोपहार ग्रहण किया। किसी भी बौद्ध विश्वविद्यालय द्वारा हिन्दू-धर्मके, जिससे पृथक् होकर बौद्ध-धर्मने अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्मित किया था, पवित्र ग्रन्थकी आनुष्ठानिक स्वीकृतिका यह पहला अवसर था।

स्वामीजीने विश्वविद्यालयके भिक्षु छात्रों तथा विद्वानोंके शोध-कार्य तथा गहन अध्ययनके लिए वेदोंका स्वागत करनेके उपसंघराजके सद्भावना-प्रदर्शनके लिए उन्हें धन्यवाद दिया। अपने उद्घाटन-भाषणमें उन्होंने कहा, भगवान बुद्धका जन्म भारतमें हुआ था। उन्होंने जिस विचारपद्धति तथा दर्शनका विकास किया, उसे कालान्तरमें बौद्ध-धर्मके नामसे जाना जाने लगा। दो हजार वर्षसे भी अधिक समय पूर्व, वहांकी जनताने इसका स्वागत कर इसे अंगीकार किया। उसे अक्षुण्ण रखनेमें उन्होंने आनंद और परमानंद दोनोंको अनुभव किया। मेरे मतसे, भगवान बुद्ध वेदोंके विरोधी नहीं थे। सच तो यह है कि वेदोंने कहीं भी 'हिंसा' का समर्थन नहीं किया है। वैसे यह सच है कि भगवान बुद्धके आगमनसे पूर्व, वेदोंके कुछ व्याख्याकारोंने अपनी विचित्र व्याख्याओंके कारण यह धर्मसंकट पैदा कर दिया था। भगवान बुद्ध अहिंसाके अनुयायी और उपदेशक थे। अन्य मामलोंमें वेदों और भगवान बुद्धके उपदेशों और साधनामें बहुत समानता है। सच तो यह है कि वेद वे योजनाएं हैं, जिनके अनुसार ब्रह्मदेवने इस ब्रह्मांडका सृजन कर, उसे आदर्श जीवन तथा विधि और नियमादि प्रदान किये।

बौद्ध-धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले देशोंमें त्रिपिटकको वेदोंके समान पूजा जाता है। मैं कह नहीं सकता कि बौद्धधर्ममें श्रद्धा रखनेवाले आपके देशमें भगवान वेदका इतना शानदार स्वागत देखकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई है।

मानवताके प्राचीनतम अभिलेख

उपसंघराजने अपने सच्चे तथा आह्लादक:स्वागत-भाषणमें आभार-प्रदर्शन करते हुए कहा, 'अभि तक हमारी महा शृंगकुट अकादमी वेद, जो मानवताके असंदिग्ध प्राचीनतम अभिलेख हैं, नहीं थे। स्वामीजीने इस महान आवश्यकता को, जिसकी कमी हमें अर्सेसे अनुभव हो रही थी, पूर्ति कर दिलायी है। अब हमारे भिक्षु छात्र और विद्वान वेदों और त्रिपिटकका तुलनात्मक अध्ययन करके लाभान्वित हो सकेंगे।'

समारोह बौद्धोंके इस परम्परागत मांगलिक मंत्रके सस्वर पाठके साथ समाप्त हुआ:—

'सब्ब बुद्धानुभावेन भवतु सब्ब मंगलम्
सब्ब धर्मानुभावेन भवतु सब्ब मंगलम्'
तथा: 'सब्बे संघानुभावेन भवतु सब्ब मंगलम्'

अकादमीके सभी भिक्षु छात्रों और अध्यापकोंने इस समारोहमें भाग लिया था। उनके अतिरिक्त, समारोहमें बंगकोकके अनेक गण्यमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे।

२२ को स्वामीने हिन्दू समाज तथा हिन्दू धर्म सभाके दो प्रसिद्ध मंदिरोंको वेदोपहार दिया। इन सब समारोहों तथा बंगकोकमें स्वामीजीके रहनेकी अवधिमें थाईदेश तथा भारतीयोंकी विशाल उपस्थिति स्वामीजीके कार्य-क्रमके प्रति उनके उत्साहकी द्योतक थी। महान महामंडलेश्वरके दर्शन तथा आशीर्वादके लिये सैकडों परिवारोंके लोग प्रतिदिन प्रातःसांय पंक्तिबद्ध उपस्थित रहते थे।

पवित्र वेदोंकी तीन प्रतियोंको पीछे छोडकर जो थाईदेशके महामहिम नरेश, महाचलालोंगकरण विश्वविद्यालय तथा एक अन्य महत्वपूर्ण, केन्द्रको (भारतीय राजदूत द्वारा) भेंट दी जाएगी। २३ की दुपहरको स्वामीजी हांगकांगके लिये रवाना हो गये। हांगकांग उनके वेदोपहार-अभियानका अगला पडाव था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक श्री : भगवानराव आर्य भोसीकर

शूद्र

शूद्र इस शब्दके उच्चारणके साथ ही हमारे सामने ऐसे व्यक्तियोंका चित्र खिच जाता है जो भारतीय संविधानमें अनुसूचित जातीके नामसे अंकित हैं। इन्हें आजकल अस्पृश्य कहा जाता है। इन जातियोंके निवास गृह गांवसे बाहर होते हैं। ये अस्पृश्य होनेके कारण ही गांवमें तथा कथित उच्च जातिके लोग इन्हें स्थान नहीं देते। बडे बडे शहरोंकी बात और है। वहां सम्मिश्र निवास स्थान पाये जायेंगे। स्पृश्यास्पृश्यता नष्ट हुई इसके सूचक ये सम्मिश्र बस्तियां नहीं होती। अपितु इसलिये ऐसी बस्तियां होती हैं कि बडे बडे शहरोंमें एक दूसरेके प्रति ही क्या पडोससे भी स्नेह सम्बन्ध न्यून होता है। परिवार असम्पृक्त रहते हैं और एक दूसरेके प्रति निश्चिन्त एवं उदास रहते हैं। अतः पडोस स्पृश्य हो या अस्पृश्य इससे कोई परिणाम नहीं पडता।

भारतमें वर्णव्यवस्था थी ऐसा कहा जाता है। कब थी यह कहना कठिन है। शास्त्रीय ग्रन्थ वर्णव्यवस्थाकी महत्ताका प्रतिपादन करते हैं। धर्मग्रन्थवेद, स्मृति तथा गीतामें वर्ण-व्यवस्थाको मान्यता प्राप्त है। पर यह कहना कठिन है कि प्रचलित जातीभेदकी नींवका कारण वर्णव्यवस्था है। आजकल पढाये जानेवाले इतिहास पुस्तकोंमें यद्यपि ऐसा प्रतिपादन है कि जातिभेदका मूल वर्णव्यवस्था है फिर भी यह विधान अधिक विचार करनेपर निराधार एवं भ्रामक प्रतीत होता है। इतिहासकारोंका ऐसा विधानही स्वयमेंं एक ऐतिहासि गप मात्र है। क्या वर्णव्यवस्थाके अस्तित्वके प्रमाणमें उन्हें कोई शिलालेख, चित्र आदि इतिहास साधन प्राप्त हुये थे जिनके आधार पर लिखा कि वर्णव्यवस्थाका विकृत रूपजातीभेद हुआ या इसका रूपांतर जातिभेदमें हुआ। इतिहासकारोंने प्रमाणोंकी अनुपस्थितिमें ही भारतीय जन मानसको मिथ्या जानकारी दी जो उनका प्रमाद एवं अक्षम्य अपराध है।

वर्णव्यवस्था गुणकर्म स्वभाव पर आधारित है तो जाति-भेद जन्मपर आधारित है। इनमें कोई मेल नहीं। फिर भी वर्णव्यवस्थाका शूद्र शब्द अस्पृश्य जातिके सन्दर्भमें प्रयुक्त होता दिखाई देता है। ऐसी निराधार और भ्रामक अवस्था शूद्र इस शब्दको प्राप्त होना उसका दुर्भाग्यही है नहीं तो क्या !! कहां व्यक्तिके गुणकर्म स्वभावको विकसित कर उसका उपयोग मानवी समृद्धिके लिए लेनेका सिद्धान्त और कहां व्यक्तिके जन्मपर आधारित समाज व्यवस्थाका सिद्धान्त! फिर भी आज शूद्र इस शब्दके स्वयम्के लिये प्रयुक्त होनेमें प्रत्येक व्यक्ति अपमान समझेगा। हीनताका अनुभव करेगा।

विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः—वेद

श्रेष्ठोंका नाम आर्य, विद्वान, देव और दुष्टोंके दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होनेसे आर्य और दस्यु दो नाम (एक मनुष्यजातिके) हुए।

—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती,

आर्योंमें पूर्वोक्त प्रकारसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

धर्मग्रन्थ वेद प्रतिपादित एक मानवजातीके दो भाग आज भी हम देख सकते हैं। एक सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनेवाले आर्य और अपनीही उन्नतिसे सन्तुष्ट रहनेवाले स्वार्थी मूर्ख, डाकू, दुष्ट दस्यु। इनमें सदासेही सुर असुरवत भेद चला आ रहा है। जनद्रोही, भ्रष्ट दस्यु-ओंकी पराजय निश्चित है।

सबकी उन्नति, सबका हित, सबका सुख एवं समृद्धिका प्रयत्न करनेवाले आर्योंमें चार प्रकारसे पुरुषार्थ होता है। ज्ञानात्मक, संरक्षणात्मक, विनियुक्त अर्थात्मक और उत्पादक उपयोगी श्रमात्मक। इसे व्यवहारमें लानेवाले क्रमवार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहाते हैं। जबतक ये चार वर्ण समन्वयात्मक भावसे समानतापूर्वक अपने अपने पुरुषार्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षेत्रमें परिश्रम नहीं करते उन्नति, प्रगति, कल्याण, समृद्धि मांगल्यकी सिद्धि कल्पना मात्र ही है। इस सामाजिक श्रम विभागवाली वर्णव्यवस्थासे उच्चनीचता स्पृश्यास्पृश्यता सम्बद्ध किये जायें तो समानता और समन्वय कैसे प्रस्थापित होगा ?

तपसे शूद्रम् —वेद

तप करनेमें समर्थ शूद्र कहलाता है

जो श्रम करता है वह शूद्र कहलाता है। उत्पादक उपयोगी श्रम करनेवाला भी कभी नीच कहला सकता है ? शूद्रत्वका श्रम विभाग उतनाही महत्वपूर्ण है जितना ब्राह्मणत्व या और कोई पुरुषार्थ, श्रमका ऊपरोक्त विभाग। स्पृश्या-स्पृश्यता नीच उच्चता ये विकृत बुद्धिकृत भेद हैं जिनका कोई आधार शास्त्रग्रन्थोंमें नहीं।

धर्मग्रन्थ पवित्र वेद कभीभी मानवोंमें असमानताका परिपोष नहीं करता। स्पृश्यास्पृश्यताकी तो बात ही दूर। वह तो मानवमात्रको एक पुरुषकी संज्ञा देता है। इस एक पुरुष रूप चेतना ही मानो यह जगद् व्यापी मानव है। या इसे यों कहा जा सकता है कि इस मानवमात्रकी 'एक चेतना' है जिसकी संज्ञा विराट् पुरुष है। पुरुषसूक्तमें इस एकात्मता का सुन्दर विश्लेषण हम भली प्रकार देख सकते हैं :

अब प्रश्न यह उठता है कि धर्मग्रन्थ पवित्रवेदमें आर्य, अनार्य और दस्युका प्रतिपादन क्यों ? इसका संक्षेपमें उत्तर यही कि उपयोगी तथा अनुपयोगी गुणोंका ठीक ठीक पता चले और अनुपयोगी गुणोंको नष्ट कर उपयोगी गुणोंकी वृद्धि करनेमें आसानी हो। मूर्खता, स्वार्थवृत्ति और असंस्कृतता, मानवतन धारी पशुकी श्रेणीमें ले जाते हैं। कर्म करनेकी स्वतन्त्रताका मिथ्या अर्थ कराचारी बनाते हैं। इससे दूर रहने और दूर करनेके लिए पवित्र वेदमें अनार्य, दस्यु, वृषल, वृत्र आदि या इस अर्थके अन्य शब्द आये हैं। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' 'मनुर्भव' ये वाक्य इसीके परिचायक हैं। सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनेवाले सबके सुखमें सुख, सबके हितमें अपना हित, स्वात्मवत् व्यवहार करनेवाले हम सब बनें क्या यह अपेक्षित नहीं ? विश्वको आर्य बनानेका घोष वाक्य इसीके लिए आदेश देता है और वास्तविक कार्यक्रम, एक योजना सामने रखता है। धर्म ग्रन्थ पवित्र वेदका कदापि ऐसा हेतु नहीं हो सकता ना है कि मानव आपसमें वर्ग बनायें और संघर्ष करें। अनुपयोगी, अनावश्यक, अनर्थकारी गुणोंको नष्ट करना बुरा नहीं। यह यहां स्पष्ट हो जाना चाहिये।

आज वर्ण व्यवस्थाको बदनाम किया जा रहा है। जाति भेदको बदनाम नहीं किया जाता। उसकी जडे उखाडनेकी बात नहीं निकलती। जिस वर्ण व्यवस्थाका अस्तित्व भारतमें ही क्या इस जगत्में सिवाय रूसके नहीं उसका विरोध होता देख आश्चर्य होता है। क्या प्रचलित जाति भेदके साथ उच्चनीचता स्पृश्यास्पृश्यता जुडे हुये नहीं ? उसका विरोध क्यों नहीं ? जो तत्व बुरा है असामाजिक है विषमताका परिपोषक है उसको समाप्त करनेकी योजना क्यों नहीं ? पर विरोधकोंका विरोध ठीक इसीके विपरीत है।

यदि वर्ण व्यवस्थाको जातिभेदके अर्थमें लेकर विरोध होता हो तो यह अनुचित है। वर्णव्यवस्थाका तत्व पृथक् है और जातिभेदका अर्थ अलग है जैसे कि ऊपर स्पष्ट किया गया है। पर वर्णव्यवस्थाके विरोधकोंको भय है कि यदि स्पष्ट रीतिसे प्रत्यक्ष जातिभेदका विरोध किया जाये तो उनके स्वार्थको धक्का पहुंचेगा और सस्ती प्रसिद्धिसे वंचित रहेंगे। व्यक्तिगत लाभको हानि पहुंचेगी। इसीलिए वे एक शास्त्रीय सामाजिक व्यवस्थाके सिद्धान्तका जिसका प्रत्यक्ष अस्तित्व नहींका विरोध करते हैं।

आज जातिवाद जोरोंपर है। उसका उपयोग विवाहके समय नोकरीके लिये, चुनावके समय, शासकीय कोई अर्थ सहाय-प्राप्त करनेके समय होता है। जातिभेदके विरोधक भी इसीके शरण जाते हैं। और शरणमें रहना पसंद करते हैं। आज जातीके नामपर कई संगठन अस्तित्वमें हैं और अस्तित्वमें आ रहे हैं अविष्यमें भी जिन जातियोंने संगठन नहीं बनाये हैं वे भी बनायेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं। फिर भी इन जातीय संगठनोंका कोई विरोध नहीं। पर स्मरण रहे जितने साम्प्रदायिक संगठन हानिकर हैं उतने ही ये जातीयवादी संगठन हानि कर हैं। सांप्रदायिक और जातीयवादी संगठनोंका भविष्यमें आपसी संघर्ष अटल है। साथ ही अल्पसांप्रदायिक और अल्प जातीय वादी असुरक्षित और प्रवाहित रहेंगे। अन्यायका निशाना बने रहेंगे। इससे कोई भी राष्ट्र उन्नत नहीं हो सकता। आपसी संघर्षमें रत राष्ट्रका भी कोई भविष्य उज्ज्वल हो सकता है ?

जातीवादके विरोधकोंको नोकरीके लिये जातिका प्रमाण-पत्र निकालते देखेंगे। चुनावके समयसे ही चुनावक्षेत्रके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाति बहुलकी जातीका प्रत्याशी चुनते हैं। इस अपेक्षासे कि उस प्रत्याशीकी जातिके लोग अनुकूल मतदान करें। शासकीय सहायता प्राप्त करते समयसे ही जाति भेदके विरोधक जातिका प्रमाणपत्र लेकर सहायताके लिये अग्रेसर रहते हैं। जातीय संगठन भी बनाये जाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि जातिभेदको जीवित ही रखना है तो फिर वर्णव्यवस्था विरोध किस लिये ? जातिभेद तो नष्ट न हो और स्वार्थकी सिद्धि तो होती रहे इसीलिये ना ?

जातीवादके साथ उच्चनीचता और स्पृश्यास्पृश्यता संयुक्त है। यदि ये सम्बद्ध न रहते तो सम्भवतः जातीभेदका गुणगान किया जाता। इसे शास्त्रीय आधार दिया जाता। संशोधक संशोधन करते और जातिभेदको स्थायीरूप दिया जाता। पर क्योंकि उच्चनीचता और स्पृश्यास्पृश्यता इससे सम्बद्ध है अतः इसका तिरस्कार किया जा रहा है। फिरभी जातीभेदका विरोध नहीं। शास्त्रोक्त सामाजिक वर्णव्यवस्थाका जिसका सिवाय इससे अन्यत्र अस्तित्व नहींका विरोध हो रहा है। अपनी रूढजातीको परित्यक्त करनेका विचार क्यों नहीं सूझता इसका आश्चर्य होता है ! परंपरागत जातीके त्यागके प्रतिज्ञासत्रका आयोजन क्यों नहीं ?

जैसा कि ऊपर प्रतिपादित है मानवमात्र एक विराट पुरुष है। मानवजाति एक है। उसमें पुनः जातिभेद कैसे ? क्या मानवमात्रका जन्मगत जातिभेद सम्भव भी है ? मानवमात्र स्वयम् एक जाति है। इसमें पुनः जातिभेदको ना कोई स्थान है नाहि अर्थ।

चातुर्वर्ण्यमें वर्ण भेद नहीं। वर्णभेदका प्रयोग रंग भेदके अर्थमें होता है। पर इसका भी सम्बन्ध चातुर्वर्ण्यसे नहीं। चातुर्वर्ण्य यह एक आदर्श व्यवस्था है। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक, तांत्रिक, वैज्ञानिक, यांत्रिक आदि कार्योंको मानवमात्रकी उन्नतिके लिये सम्पन्न करानेके लिए यह व्यवस्था शास्त्र सम्मत है। इन विभिन्न मानवोन्नतिके क्षेत्रोंके लिये उसके योग्य योग्यतम व्यक्तियोंको प्रयुक्त करना क्या न्याय संगत नहीं ? एक क्षेत्रके योग्य व्यक्तिको अन्यक्षेत्रके लिये प्रयुक्त करना क्या बुद्धिसंगत बात हुई। यह राजधर्मका कर्तव्य है कि वह योग्यतम व्यक्तियोंको उस योग्य क्षेत्रके लिए सम्बद्ध करे। जातिभेदके अस्तित्वके साथ ऐसी न्याय व बुद्धिसंगत व्यवस्थाका कार्य क्या राजधर्मसे हो पाना सम्भव है ?

कुछ लोगोंका यह अभिमत है कि वर्णव्यवस्थाकी शूद्र-संज्ञा मूर्ख तथा पागलके लिए है। अतः सेवाकार्य विभाग ही इनके जिम्मे है। पर यह धारणा सत्यसे दूर है। अपनी बौद्धिक क्षमता शारीरिक क्षमता और आर्थिक क्षमताका उपयोग मानवमात्रकी सेवामें उन्नतिमें लगाना वर्णव्यवस्थामें प्रत्येकका आधुनिक नैतिक अनुशासनात्मक कर्तव्य है। फिर यह केवल किसी एक वर्णके जिम्मे हो यह मानना ठीक नहीं। शारीरिक पर उत्पादक श्रममें अभिरुचि होना शूद्र संज्ञाके लिए धर्मग्रन्थ पवित्र वेद व्याख्यात (तपसे शूद्रम्) है यही सर्व सम्मत है। मूर्ख या पागलके लिये शूद्र संज्ञा नहीं।

अनार्य अर्थात अनाडी (मूर्ख) – महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

श्रम, पुरुषार्थके विभाग आर्योंमें होते हैं अनार्यों दस्युओंमें नहीं। अनार्यों दस्युओंको आर्य बनाकर ही उन्हें श्रमविभाग दिया जा सकता है।

बुद्धिसे प्रगल्भ व्यक्ति यदि उसकी शारीरिक क्षमता है और मानसिक झुकाव उत्पादक श्रमकी ओर है तो वह शूद्र श्रम विभागके लिये योग्य है। यह मानना सद्यः प्रचारित वातावरणमें कुछ असंगत प्रतीत होगा। पर यदि हम वर्णव्यवस्थाके धार्मिक ग्रन्थ पवित्र वेदके पहलूको गहराईसे सोचें और समझें तो असंगत प्रतीत न होगा। श्रममें बुद्धिकी क्या आवश्यकता यह प्रश्न उठ सकता है। पर क्या यह सत्य नहीं कि उत्पादक श्रम करनेवाला व्यक्ति प्रशिक्षित होतो ही वह योग्य रीतिसे शारीरिक श्रमकर नियत कार्य सम्पन्न करेगा ? जमीनकी साधी खुदायीका काम हो चाहे पत्थर फोडनेका कार्य। पागल या मूर्ख यह कार्य नहीं कर सकता। ना इनसे योग्यरीतिसे और आवश्यक उतनी खुदायी हो पायेगी नाही पत्थर नियोजित पद्धतिसे परिमाणमें फोडा जा सकेगा। यंत्रचालन, बांधकाम, भोजनपकाना आदिकी बात ही दूर रही। क्या यह सत्य नहीं कि यदि सुशिक्षित सुपठित, प्रशिक्षित अनुभवी अभियन्ताको किसी मैदानमें किसी एक बिन्दूसे चारसौ फुट दूर दूसरे बिन्दू तक सीधी रेखामें (रेखा न खींची गयी हो तो) चलकर जाना सम्भव नहीं ? इससे यही सिद्ध होता है कि शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तिको मार्गदर्शक निरीक्षक, नियंत्रककी अपेक्षा होती है। शारीरिक उत्पादक, उपयोगी श्रम करनेवाले व्यक्तिका सुशिक्षित, सुपठित, प्रशिक्षित होना आवश्यक है। ऐसा हुआ तो ही शारीरिक श्रम उत्पादक श्रम उपयोगी श्रम सिद्ध होगा। अन्यथा उद्दिष्ट अप्राप्त रहेगा।

यदि हम अधिक विचार करें तो यही सिद्ध होता है कि शूद्र श्रम विभाग वही अपना सकता है जिसका उस अनुकूल गुण हो साथ ही उस कामके योग्य शारीरिक क्षमता रखता हो और बुद्धियुक्त श्रम करनेमें कुशल हो। शूद्रत्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवार्य कोटिका नहीं वह आर्य कोटिका अंग विभाग है जैसे कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके ऊपरोक्त उद्धरणसे सिद्ध है।

क्या शूद्रत्वका स्तर निम्न है ? जो अपनी शिक्षा प्रशिक्षण, बौद्धिक प्रगल्भता और अनुभवके आधारपर अपने शारीरिक श्रम द्वारा उत्पादक एवं उपयोगी कर्म करता हो और सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति मानता हो वह हीन कैसे ? हीन तो वही जो हीन साहित्य एवं विचारोंके वातावरणमें सांस लेता है। शूद्रत्व और निम्नस्तर ये धर्मग्रन्थ पवित्र वेदकी आत्माके आज्ञाओंके प्रतिकूल है। शूद्रत्व, ब्राह्मणत्व विशत्व क्षात्रत्व समान हैं क्योंकि उनका भावनात्मक उद्देश है सेवा, कर्तव्यदक्षता, अनुशासन, स्वात्मवत् व्यवहार और सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति जो सबमें समान रूपसे विद्यमान होते हैं। हमें आज धर्मग्रन्थ पवित्र वेदके आलोकमें आनेकी आवश्यकता है। जहांसे प्रेरणा प्राप्त कर योग्य मार्गानुसरण करनेमें कठिनायी न हो। हमारा जीवन मार्ग सत्यअर्थ लिए हुये शुभ बने।

कुछ जातियां क्योंकि उन्हें शूद्र सम्बोधित करते हैं स्वयम्को शूद्र समझती हैं। इसी प्रकार क्योंकि शूद्रको हीन नीच कहा जाता है अतः ऐसाही वे समझती हैं। यह शास्त्रोंके विरुद्ध है। शूद्र यह संज्ञा हीन नीचके लिये उपयोगमें नहीं लायी जा सकती। नाहि इसका कोई सम्बन्ध किसी जन्मना जातीसे है। और फिर यह कि स्वयम्को किसीके सम्बोधनसे हीन नीच समझना उतनाही सदोष है जितना सम्बोधित करना अनुचित। धार्मिक दृष्टि कोणसे तो ना कोई व्यक्ति नाही कोई जाति जन्मसे हीन नीच हो सकती है। सबको सुसंस्कृत होने विकास करनेका समान अवसर प्राप्त है। दस्यु और अनार्य भावसे आर्यत्वकी ओर अग्रेसर होनेका मनसा कर्मणा प्रयत्न होना सबको आवश्यक है। ज्येष्ठता और हीनताकी ग्रन्थियोंका निर्माण नीच उच्चताने किया है। येही ग्रन्थियां संघर्ष कराती हैं। सवर्ण और दलित संघर्ष, गोरेकालेका संघर्ष इसीके परिणाम हैं। साम्प्रदायिकता, जातीवाद, सामाजिक उच्चनीचता, स्पृश्यस्पृश्यता, रंगभेद आदि दुरितोंको नष्ट करनेके लिये संघर्ष क्यों नहीं होता ? सम्प्रदाय जाती, असमानता, विषमता, भेद आदिको मनसा वाचा कर्मणा त्याग कर आर्यत्वकी ओर अग्रेसर होना, आजके युगकी सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक, आध्यात्मिक समस्याओंका निःसंशय एक मात्र समाधान है भ्रामक कल्पनाओंका मूल रखकर अर्थात् साम्प्रदायिक और जातीय वादी बने रहकर संघर्ष चलाना अनुचित है। सस्ती प्रसिद्धि और राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करनेवाले व्यक्ति हीनता और ज्येष्ठताकी सामाजिक न्यूनताका अनुचित लाभ ले रहे हैं और पुनः सम्प्रदाय और जातीकी गर्तकी ओर लेजा रहे हैं यह देख इन स्वार्थी राजनीतिक नेताओंके विचारोंमें फंसी जनता पर तरस आता है। जनतामें स्वार्थी और निःस्वार्थकी पहचानका विवेक आनेतक, उनमें वैचारिक जागृति आनेतक प्रतीक्षा करना जागृत करनेका प्रयत्न करना यही आज शेष है। इसके लिये प्रभावी पथ उठाना आवश्यक है।

यदि आप जानना चाहते हैं कि—

(१) प्राचीन भारतकी राज्यव्यवस्था कैसी थी ?

(२) उस समयकी समाजव्यवस्था कैसी थी ?

(३) उस समयकी अर्थव्यवस्था कैसी थी ?

तो अवश्य पढिये—

यदि आप राजनीतिज्ञ हैं, तो "राज्यव्यवस्था" का अध्ययन आपको अवश्य करना चाहिए।

यदि आप समाजसुधारक हैं तो "समाजव्यवस्था" आपको अवश्य देखनी चाहिए।

यदि आप अर्थशास्त्री हैं तो "अर्थव्यवस्था" पर अपनी नजर अवश्य रखनी पडेगी।

और यदि आप अधिकारी हैं तो "प्रजाव्यवस्था" पर आपको ध्यान रखना पडेगा।

पर ये समस्यायें अब आपके लिए समस्यायें ही नहीं रह गई हैं। क्योंकि इन सबका समाधान आपको—

चाणक्य सूत्राणि

में मिल सकता है। सुप्रसिद्ध टीकाकार श्री रामावतारजी विद्याभास्कर की सुबोध एवं सरल हिन्दी टीकाए १९० पृष्ठसंख्यावाले इस महान् और अमूल्य ग्रंथकी कीमत सिर्फ १८) (डा. व्य. पृथक्) है। शीघ्रता कीजिये आज ही मंगवाए।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)', पारडी [जि. वलसार]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'वरुणकी आज्ञा लेकर मातलि वरुणदेश और नाग देशमें घूम रहा था।' अधिपतिकी आज्ञाके विना विदेशमें भ्रमण अशक्य होता है। आजकल भी विदेशमें जानेके लिये सरकारकी आज्ञा (Pass port) लेनी ही पडती है। वही बात प्राचीन कालमें भी थी।

इस विवरणसे स्पष्ट हो रहा है कि वरुणदेश, नागदेश, (वरुण लोक, नागलोक) पाताल, तल ये देश पश्चिम समुद्रके समीपके हैं और दूसरी ओर इन देशोंके गोकर्ण क्षेत्र और मलय पर्वत हैं। अब और देखिये—

अत्र राक्षसजात्यश्च दैत्यजात्यश्च मातले।
दिव्यप्रहरणाश्चासन्पूर्वदैवतनिर्मिताः ॥ १७ ॥
अशास्यानपि शास्त्येष रक्षोबन्धुषु राजसु ॥ २१ ॥
(म. भा. उ. अ. ९८)

'हे मातले! यहां राक्षस जाति और दैत्य जातिके लोक, जिनके पास युद्धविषयक शस्त्रास्त्र उत्तम रहते थे, निवास करते थे। राक्षसादिकोंको जो कि शासन करनेके लिये भी कठिन हैं उनका भी शासन यह करता है।' यह इस शासनका वर्णन देखने योग्य है। इसमें यह भी सिद्ध हो रहा है कि राक्षस और दैत्य परस्पर भिन्न जातियां थीं और ये जातियां भी इस महीतल नामक भारत वर्षके एक प्रान्तमें आकर रहती थीं। यह महीतल देश पूर्वोक्त पाताल देशके उत्तर भागमें ही होना संभव है क्योंकि महीतलसे ही मातलि पातालमें गया था।

पाठक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि यह सब वर्णन भारत वर्षके पश्चिम समुद्रके समीपके प्रदेशका ही वर्णन है। गोकर्ण क्षेत्र तथा मलयगिरी पश्चिम समुद्रके समीपवर्त्ति प्रदेशमें ही हैं, वहांसे उत्तर दिशामें आते आते पश्चिम समुद्र और सह्यपर्वतके मध्यका जो प्रांत है उसके ये नाम महाभारतके पूर्व समयके हैं ऐसा उक्त वर्णनोंसे स्पष्ट हो रहा है। उद्योग पर्वमें ऐसा कहा है कि यह 'पुरातन इतिहास है।' अर्थात् उस प्राचीन समयका यह पुरातन इतिहास है। महाभारतके समय पश्चिम समुद्रके प्रदेशको 'अपरान्त, अपरान्तक' ये नाम थे। —

सोऽपरान्तेषु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
सर्वाण्येवाऽनुपूर्व्येण जगामाऽमितविक्रमः ॥ १ ॥
(म. भा. आदि. अ. २२०)

'वह महा पराक्रमी अर्जुन अपरान्त देशमें तीर्थ और पुण्य स्थान सब क्रमसे देखता हुआ भ्रमण करता रहा।'

इस भ्रमण वृत्तांतसे हम इन प्रांतोंका क्रम निश्चित कर सकते हैं—

मातलि 'मही पृष्ठ' से (अरावली तथा विंध्य-पर्वतके ऊपरसे) 'मही-तल' में उतर कर पहिले वह वरुण देशमें गया—

अवगाह्य तु तौ भूमिमुभौ मातलिनारदौ।
ददृशाते महात्मानौ लोकपालमपां पतिम् ॥ ६ ॥
(म. भा, उ. अ. ९८)

'मातली और नारद ये दोनों नीचेवाली भूमिपर उतरे और जलके स्वामी वरुणको उन्होंने देखा' यहां निम्न भूमिका तात्पर्य पर्वतकी उतराईपर प्राप्त होनेवाला निम्न प्रदेश ही है।

पश्चात् वही मातली नागलोकोंकी पाताल नगरीमें आ गया। देखिये—

एतत्तु नागलोकस्य नाभिस्थाने स्थितं पुरम्।
पातालमिति विख्यातं दैत्यदानवसेवितम् ॥
(म. भा. उ. अ. ९९ । १)

'यह नाग लोककी पाताल नगरी है जहां दैत्य और दानव रहते हैं।' यहां मातली अब पहुंचा।

वहांसे वह दैत्योंके हिरण्यपुरको पहुंचा, देखिये—

हिरण्यपुरमित्येतत्ख्यातं पुरवरं महत्।
दैत्यानां दानवानां च मायाशतविचारिणाम् ॥
(म. भा. उ. १०० । १)

'यह माया व्यवहार करनेवाले दैत्य दानवोंका हिरण्यपुर है।' यहां भ्रमण करके नारद और मातली आगेको चले और पश्चात् वहांसे सुपर्ण लोकको गये दखिये—

अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम्।
विक्रमे गमने भारे नैषामस्ति परिश्रमः ॥
(म. भा. उ. १०१ । १)

नारद मातलिको सुपर्ण लोकका दर्शन कराते हैं—'यह सुपर्णोंका लोक अर्थात् देश है।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहां भी उसके चित्तके अनुकूल दामाद प्राप्त न होनेके कारण वह रसातलमें गया देखिये—

इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम्।
यत्रास्ते सुरभिर्माता गवाममृतसंभवा॥
(म. भा. उ. १०२। १)

'यह रसातल पृथ्वीका सातवां तल है। यहां उत्तम गौएं हैं।' इस स्थानपर नारद और मातलि आ पहुंचे।

रसातलके विषयमें पुराण गाथा नामक प्राचीन इतिहासके महाभारत उद्योग. अ. १०२ में निम्न श्लोक देखने योग्य है—

न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे।
परिवासः सुखस्तादृक् रसातलतले यथा॥ १५॥
(म. भारत. अ. १०२)

'नागलोकमें, स्वर्गमें, विमानरूप त्रिविष्टपमें, वैसा निवास सुख दायक नहीं है जैसा रसातलतलमें है।' अर्थात् रसातलतलका स्थान सुरम्य है और वहां रहना भी सुखदायक है।

मातली दामादके लिये ढूंढ रहा था। उसने रसातलकी राजधानी भोगवतीमें चिकुर नामक नागका सुपुत्र सुमुख नामक नाग अपनी कन्याके लिये वर पसंद किया। यही भोगवती रसातलकी राजधानी थी। तथा रसातल यह महीतलका एक विभाग या प्रांत था। महीतल और महीपृष्ठ ये दो नाम भूपृष्ठके प्रतीत होते हैं। महीपृष्ठ वह भाग है जो कि पर्वतके ऊपरका भाग तथा महीतल वह भाग है जो कि पर्वतके नीचेका भाग (High land & low land) समुद्र जलपृष्ठसे बहुत ऊंचा जो विभाग होता है उसका नाम महीपृष्ठ (High land) तथा समुद्र जलपृष्ठके समान ऊंचाईमें जो भूभाग उसका नाम महीतल (Low land) है। इसी प्रदेशका महाभारतकालीन नाम 'अपरान्तक' था। 'तल' वाचक नाम महाभारतसे भी अति प्राचीन कालके थे। अपरान्तका अर्थ अपरसमुद्रके समीपका प्रदेश। 'अपर समुद्र' पश्चिम समुद्रका ही नाम है। पर या पूर्व समुद्र इससे भिन्न है। अपर समुद्रके पास बहुत ग्राम तथा प्रांत थे इसीलिये पूर्वोक्त श्लोकोंमें 'अपरान्तेषु' ऐसा बहुवचनी शब्द प्रयोग किया गया है।

रसातलमें नागोंकी अनेक जातियाँ अथवा अनेक कुल या वंश थे, जिनमेंसे कुछ वंशोंके नाम देखिये—

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ।
कालियो नहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ ९॥
बाह्यकण्डो मणिर्नागस्तथैवापूरणः खगः।
वामनश्चैलपत्रश्च कुकुरः कुकुणस्तथा ॥ १०॥
आर्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ।
कैलासकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ॥ ११॥
सुमनोमुखो दधिमुखः शङ्खो नन्दोपनन्दकौ।
आप्तः कोटरकश्चैव शिखी निष्ठूरकस्तथा ॥१२॥
तित्तिरिर्हस्तिभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः।
द्वौ पद्मौ पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ॥ १३॥
करवीरः पीठरकः संवृत्तो वृत्त एव च।
पिण्डारो बिल्वपत्रश्च मूषिकादः शिरीषकः॥ १४॥
दिलीपः शङ्खशीर्षश्च ज्योतिष्कोऽथापराजितः।
कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च कुहुरः कृशकस्तथा ॥ १५॥
विरजा धारणश्चैव सुबाहुर्मुखरो जयः।
बधिरान्धौ विशुण्डिश्च विरसः सुरसस्तथा॥१६॥
एते चाऽन्ये च बहवः कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः।
(महाभारत उद्योग अ. १०३)

इन श्लोकोंमें दसवें श्लोकमें 'कुकुण' एक शब्द है। इसी शब्दसे संस्कृतमें 'कुंकण, कौंकण' ये शब्द बने हैं और मराठीका 'कोकण अथवा कोंकण' शब्द बना है। कोंकण उस प्रांतका नाम है जो मुंबईसे गोकर्ण तक लंबा और सह्य पर्वतसे पश्चिम समुद्रतक चौडा है। उत्तरमें मुंबई, दक्षिणमें गोकर्ण, पश्चिममें पश्चिमीय समुद्र या अरबी समुद्र और पूर्वमें सह्य पर्वत है। इस प्रांतका नाम 'कोंकण' है और यह कोंकण नाम इस नाग राजाके नामसे संबंधित है। अर्थात् किसी प्राचीन कालमें इस नाग राजाने बडा विक्रम किया होगा। अथवा इस नाग जातीके लोगोंने बडा पराक्रम किया होगा जिसके कारण उनके राज्यके प्रदेशको भी उनका ही नाम पडा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपरान्तक प्रदेशका ही नाम कोंकण है अर्थात् अतिप्राचीन नाम महीतल, पाताल, रसातल आदि 'तल' प्रत्ययांत थे, महाभारत कालीन नाम अपरान्तक और इस समयका नाम कोंकण है।

इसी प्रांतमें नागलोग रहते थे, तल, अतल, वितल, सुतल, महीतल, रसातल, तलातल, पाताल ये नाम इसी देशके विभिन्न भागोंके हैं। महाराष्ट्रके प्राचीन पुस्तकोंमें 'चौदह ताल कोंकण' देश है ऐसा वर्णन भी है। उक्त स्थानमें पातालोंके सात नाम आते हैं। प्रत्येकके दो दो विभाग करनेसे ठीक चौदह हो जाते हैं। इसमें महीतल मध्य विभाग, पाताल सबसे दक्षिण विभाग और अतल सबसे उत्तरीय विभाग समझना उचित है। 'अतल' शब्द ही बता रहा है कि वह प्रदेश (अ-तल) तल नहीं है परंतु महीपृष्ठ भी नहीं है। अर्थात् तिब्बा ही नहीं और समुद्रके सम निचला भूभाग भी नहीं है। पाताल शब्द समुद्र पृष्ठके बराबर वाले भूभागका नाम इससे स्पष्ट हो रहा है। अन्य नाम न्यूनाधिक उच्च नीच भूभागके हैं।

कोंकण सह्यपर्वत-देश-महीपृष्ठ
अतल
महीतल
पाताल
समुद्र

इस प्रकार सिद्ध हो रहा है कि नागलोक कोंकण देशका नाम है, इसीका नाम पाताल है। इस पाताल देशके लोगोंकी लडकियोंके साथ स्वर्गके इंद्रसारथी मातलिकी पुत्रीका विवाह होता था अर्थात् नाग लोग भी मनुष्य ही थे और तिब्बतकी देव जाती भी मनुष्य ही थी। जिस प्रकार आजकल जापानी और योरोपीय नामसे भिन्न जातीय या भिन्न देशीय लोग समझे जाते हैं उसी प्रकार उस प्राचीन कालमें तिब्बतमें देव जातीके मनुष्य, भारतके उत्तर भागमें आर्य जातिके मनुष्य, इस कोंकणमें नाग या सर्प जातीके मनुष्य रहते थे।

अब उक्त सर्प जातीके नामोंका भी विचार करना चाहिये। उक्त श्लोकोंमें जो सर्प जातीके कई नाम दिये हैं वे ही नाम इस समय मराठा क्षत्रियोंमें चले आते हैं देखिये—

	संस्कृत	महाराष्ट्री	मराठी नाम
१	वासुकि	वासुइ	वासे, भासे
२	तक्षक	तखअ	तखे, तिखे
३	कर्कोटक	कक्कोडअ	कोकटे, गोकटे
४	कालीय	कालीअ	काळिये, काळये, काळे
५	वामन	वामण	वामणे
६	कुकर		कोकरे
७	कुकुण		कोंकणे
८	नंदक	णंदअ	नंदे, णंदे
९	कलश	कलस	कळशे
१०	पोतक	पोतअ	पोते
११	पिंजरक	पंजरअ	पिंजरे
१२	नाग	नाग	नाग
१३	शंख	संख	संक
१४	कोटरक	कोट्टरअ	कुटरे
१५	निष्ठूरिक	निट्ठरिअ	निचुरे
१६	तित्तिरि		तितरे
१७	मुद्गर	मोग्गर	मोगरे
१८	करवीरक	करवीअक	करवे, कर्वे
१९	पिठरक		पिठरे
२०	दिलीप		दुळीप, धुळप
२१	शिरीषक	शिरिखअ	शिर्खे, शिर्के
२२	शंखपाल (नागनंदनाटकसे)		संकपाल
२३	विरजा		विरजे
२४	कंबल		कांबळे
२५	मणि		माने, मणे
२६	आर्यक		आडके
२७	शबल		सावले, सांपळे
२८	सुमन		सोवने, सोने, सोमणे, सोमण
२९	पिंगल		पिंगळे
३०	पिंडरक		पेंढरे
३१	करवीर		करवीरे
३२	बिल्वक		बेल्हे, बेले
३३	हरिद्रक		हळदे
३४	पन्नग		पानके

×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३५ श्रीवह	शिरवे, सुरवे
३६ कुठर	कुठरे
३७ कुंजर	कुंजरे
३८ कर्दम	कदम
३९ कर्कर	कर्करे

इन नामोंके कई नाम महाभारत आदिपर्वके आस्तीक पर्व अ० ३५ से लिये हैं और कई उद्योग पर्वके पूर्वोक्त श्लोकोंसे लिये हैं।

इस प्रकार नाग जातीके नाम मराठा क्षत्रियोंके जातिवाचक नाम इस समय प्रसिद्ध हैं और भी कई नाम ढूंढनेपर मिल सकते हैं। अन्य प्रांतोंमें भी इन नामोंकी खोज करनी चाहिये।

यहां इतना कहना आवश्यक है कि जातिवाचक नाम जो इस समय नामोंके आगे लगाते हैं उनमें बडा इतिहास है। प्राचीन नामोंको ठीक प्रकार ढूंढनेमें उनकी बडी सहायता हो सकती है। कईयोंके नाम बडे विचित्रसे दिखाई देते हैं इसलिये कई लोग उनको छोड देते हैं, परंतु यह भूल है। उक्त प्रकार तुलना करनेसे पांडवकालीन जातियोंका पता लग सकता है और बडी ही इतिहासिक खोज हो सकती है। इसलिये जातिवाचक नाम तथा ग्रामके नाम इन दोनोंका इतिहासकी खोजकी दृष्टिसे बडा महत्त्व है इसलिये इसको कोई व्यर्थ न समझे।

नागनाम	मराठी नाम
नागपति—नागवइ—नागवी—	नागवे
पर्णपति—वण्णवई—वणवी—	वणवे
तलकर	तळेकर
फणिवर	फणिवर

यदि ये जातिवाचक नाम मराठोंमें इस समय प्रचलित न होते, तो नागजातीका पता लगाना प्रायः असंभव ही हो जाता। ये नाम महाराष्ट्रमें इस समय हैं, इस लिये इस समय निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि मराठा क्षत्रियोंमें कई नागकुलके लोग विद्यमान हैं। इससे पूर्व गणदेव जातीके महाराजिक ये मराठे हैं यह भी बताया जा चुका है।

राजतरंगिणीमें कहा है कि प्राचीन कालमें कश्मीरमें नागोंका राज्य था। खांडव प्रस्थकी दक्षिण दिशामें तथा यमुना नदीकी दक्षिण दिशामें खांडव वनमें नागोंकी वस्ती थी यह वृत्तांत खांडव दाह पर्वमें आदिपर्वमें ही लिखा है। नागपुरमें नागोंका वास्तव्य था इस विषयमें हरिवंशमें वर्णन है। अर्थात् पांडवोंके पूर्व समयमें तथा पांडवोंके समयमें भारत वर्षमें कोंकणसे अन्यत्र भी नागोंका राज्य या वसाहत थी। सर्पसत्रके काव्यपूर्ण वर्णनसे स्पष्ट हो रहा है कि नागों और आर्योंका बडा भयानक युद्ध हुआ था और आर्योंने नागोंकी बडी भारी कतल की थी। इतना होनेपर भी कई नाग आर्योंके मित्र भी थे और इसी कारण अर्जुनका उलूपी नागकन्याके साथ विवाह हुआ था।

तात्पर्य यह है, कि नागजातीका मूल स्थान पातालदेश अर्थात् कोंकण और वहांसे वे अन्यत्र भारत वर्षमें फैले थे। इसीलिये पाण्डवादि आर्य वीरोंने उनको उत्तर भारतसे फिर दक्षिण भारतमें हटा दिया था। और उनको इस प्रकार हटानेके लिये ही नागोंका आर्योंसे युद्ध हुआ था।

नाग और देव।

पूर्वोक्त वर्णनोंसे पता लगता है कि तिब्बत देशमें देव जातीके मनुष्योंका राज्य था। आर्यावर्त देश अर्थात् उत्तर भारतमें आर्यजातीके मनुष्योंका राज्य था और भारतके पश्चिम समुद्रके पासके कोंकण देशमें नाग जातीके मनुष्योंका राज्य था। आर्योंके अभ्युदयके पूर्व प्रायः संपूर्ण भारतवर्षमें नागजातीने अपना अधिकार जमाया था। तक्षशिला, खांडववन आदि स्थानके वर्णन विशदरूपसे बता रहे हैं कि वहां नागजातीका शासनाधिकार था। खांडववन इंद्रप्रस्थके पास था और वहां नागोंका राज्य था। अर्जुनने खांडववन जलाकर वहांके नागोंका संहार किया इसीलिये नागलोक आर्यजातीके नाशके लिये तैयारी कर रहे थे परंतु अंततक वे अपना बदला न ले सके। एक बार दबी हुई जाती फिरसे उन्नत होना कई कारणोंसे कठिन हो जाता है। अर्जुनादि आर्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वीरोंने नागजातीको इतना दबाया कि उनका पुनरुत्थान असंभव हुआ। वासुकी, तक्षक, अश्वसेन आदि नागजातीके वीर अपनी ओरसे बडे प्रयत्न कर रहे थे, परंतु किसीके भी यत्नको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अश्वसेनने कर्णका आश्रय करके अर्जुनके वधका प्रयत्न किया परंतु वह फलीभूत नहीं हुआ और वहां ही अश्वसेनको मरना पडा। तक्षकने परीक्षितको गला घूटकर मारा, परंतु उस कारण आर्योंने नागोंकी कतल अधिक क्रूरताके साथ की। इस प्रकार जो जो प्रयत्न पराभूत नागजातीने अपनी उन्नतिके लिये किये वे असफल ही हुए। और उन अराजकीय (anarchical) अत्याचारोंसे नागजातीका अधःपात ही होता गया।

जिस समय आर्योंका हल्ला नागजातीपर हुआ, उस समय नागोंके राजा तक्षक ये स्वयं इंद्रलोकमें अर्थात् तिब्बतमें जाकर देवराज इंद्रके मेहमान बनकर रहे थे। ये वहां इसलिये गये थे कि इंद्रसे अपनी नागजातीकी रक्षाके लिये कुछ सहायता मिल जाय तो उस दिशासे यत्न करना। सर्पसत्रके प्रसंगमें अर्थात् सर्पजातीकी कतल होनेके प्रसंगमें ये सर्पराज तक्षक इंद्रकी शरणमें गये थे और इन्द्रने इनको आश्रय भी दिया था। परंतु उसका भी कुछ उपयोग न हुआ क्योंकि आर्यजातीके वीरोंका पराक्रम इस समय अधिक ऊंचे दर्जेपर था। और इस कारण देवराजकी सहायता प्राप्त होनेपर भी नागजाती आर्योंका कुछ भी बिगाड न कर सकी।

इस पूर्व इतिहासको यहां लिखानेका हेतु यह है कि इसे देवजाती, आर्यजाति और सर्पजाति ये सब जातियां मनुष्यजातीयां ही थीं, यह सिद्ध हो जाय। देव आर्योंके शत्रुभूत सर्पजातीकी भी सहायता करते थे, तथा महादेवादि भूतजातीके राजाने असुर राक्षसोंको सहायता कर करके बहु प्रबल बनाया था, जिसके कारण आर्योंको बडा क्लेश भोगना पडा था। इससे स्पष्ट होता है कि देवजाती भी एक स्वतंत्र मनुष्यजाती थी और देवोंके राज्यका राजनैतिक संबंध किसी समय असुरोंसे, किसी समय सर्पजातीसे और किसी समय आर्योंसे हुआ करता था। अतः ये सब जातियां मनुष्यरूप होनेमें शंका ही नहीं है।

स्वर्गद्वार।

तिब्बत देशको हमने स्वर्ग निश्चित किया है, उस स्वर्गमें भी स्वर्ग, त्रिविष्टप, आदि विभिन्न प्रांत होना संभव है, क्योंकि—

न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे।
परिवासः सुखस्तादृग् रसातलतले यथा॥

(म. भा. उ. १०२।१५)

इस श्लोकमें स्वर्ग और त्रिविष्टप भिन्न देश होनेका वर्णन है। संभवतः तिब्बतके पूर्व भागको त्रिविष्टप और पश्चिम भागको स्वर्ग कहते होंगे, क्योंकि गंगोत्री, बद्रिनाथ, बद्रिकेदार आदि स्थानोंके उत्तर प्रदेशमें "स्वर्गद्वार" नामक एक स्थान ही है। हिमालयके एक शिखरपर यह स्थान है। कई इसे स्वर्गकपाट कहते हैं और कई स्वर्गद्वार कहते हैं। यह स्थान प्राचीन कालमें स्वर्गमें प्रविष्ट होनेका स्थान विशेष था। जिस प्रकार राज्यमें प्रवेश मार्ग होते हैं उसी प्रकार देवराज्यमें प्रवेश करनेका यह विशेष प्रशस्त मार्ग था। उसका स्मरण रखनेके लिये ही इस समय "स्वर्गद्वार" नामसे उस स्थानकी पवित्रता मानी जाती है। हरएक त्रिस्थलीके यात्री इसका दर्शन करते ही हैं और कमसे कम जीवनमें स्वर्ग नहीं तो न सही, स्वर्गद्वारका दर्शन अपने चर्मचक्षुओं द्वारा करके अपने आपको धन्य समझते हैं। इस स्वर्गद्वार नामक स्थानसे सिद्ध होता है कि स्वर्ग उस स्वर्गद्वारके परे है अर्थात् हिमालयके परे है। इसीलिये हमने इससे पूर्व बताया है कि तिब्बत ही स्वर्ग था और यहां पता लगा है कि इसके पश्चिम भागका नाम "स्वर्ग" और पूर्व विभागका नाम "त्रिविष्टप" था। यह भी स्थूल दृष्टिसे ही निर्देश है क्योंकि उस समयके स्वर्गीय प्रदेशके विविध प्रांतोंका पता इस समय लगना करीब करीब असंभव है क्योंकि काल बहुत व्यतीत हुआ है और स्थानोंमें परिवर्तन भी बहुत हो चुके हैं। तथापि जो जो निर्देश आर्य साहित्यमें हमें मिलते हैं उनसे जहांतक पूर्वकालीन भूविभागोंकी खोज हो सकती है करनी आवश्यक ही है और उस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खोजके प्रकाशमें उस प्राचीन कालका इतिहास पढना आवश्यक है। इसी दृष्टिसे ये लेख लिखे जा रहे हैं। अस्तु! इस प्रकार स्वर्गद्वारका पता लगनेसे हमें स्वर्गके मार्गका पता लगा है। भारतवर्षसे जो लोग स्वर्गमें जाते थे वे इसी स्वर्गद्वारके मार्गसे ही जाते थे। आगे स्वर्गारोहणपर्वमें पांडवोंके स्वर्गमें जानेका वर्णन आनेवाला है उस स्थानमें पाठक देख सकते हैं कि पांडव लोग भी हिमालय पर्वपतर चढकर ही स्वर्गमें पहुंचे थे।

स्वर्गारोहण।

स्वर्गारोहणका अर्थ स्वर्गलोकमें चढना है। इस शब्दमें जो 'आरोहण' शब्द है वह पहाडोंपर चढनेका अर्थ बताता है। वृक्षपर आरोहण, हाथी या घोडेपर आरोहण, अथवा पर्वतपर आरोहण होता है, अर्थात् निम्न भागसे ऊंचे भागपर चढनेका तात्पर्य इस शब्दसे व्यक्त होता है। इसलिये यह शब्द सिद्ध करता है कि स्वर्ग किसी तिब्बेपर है, इसी हेतुसे हमने तिब्बतमें इसके होनेका निश्चय किया है।

पांडवोंके स्वर्गारोहणका वृत्तांत जो महाभारतके अंतमें दिया है उससे स्पष्ट पता लगता है कि तिब्बत ही स्वर्गधाम है क्योंकि धर्मराज आदि जो वीर स्वर्गमें गये वे हस्तिनापुर (दिल्ली) से गंगा किनारे पहुंचे अर्थात् देहलीसे उत्तर दिशामें गये, वहां गंगानदीमें स्नान करके फिर उत्तर दिशामें चलकर स्वर्गमें पहुंचे हैं। हस्तिनापुरके उत्तरमें गंगानदी और गंगाके उत्तरमें हिमालय है। यह स्थिति देखनेसे स्पष्ट हो रहा है कि स्वर्ग हिमालय पर्वतके परे ही है। अर्जुन जीवित दशामें ही महादेवके पास तथा इन्द्रके पास शस्त्रास्त्र सीखने गया था वह भी उत्तर दिशामें ही चलकर वहां पहुंचा था। इससे सिद्ध है कि भारतवर्षकी उत्तर दिशामें गंगा और हिमालयके परे स्वर्गधाम है और इसी स्थानमें धर्मराज आदि गये थे। आगे जाकर सम्राट् धर्मराज जब स्वर्गके पास पहुंचे तब वहांके देव अपने अपने रथ आदि लेकर उसका स्वागत करनेके लिये आये थे। यह महाभारतके अंतिम भागका वर्णन देखनेसे स्पष्ट होता है कि यह सत्कारकी रीति भी विजयी पुरुषोंके योग्य है। देखिये—

ततः सम्नादयञ्छक्रो दिवं भूमिं च सर्वशः।
रथेनोपययौ पार्थमारोहेत्यब्रवीच्च तम्॥
(म. भा. महाप्रस्था. ३।१)

जब सम्राट् धर्मराज स्वर्गके पास पहुंचे तब 'इंद्र अपने रथके साथ दिशाओंको शब्दमय करता हुआ सन्मुख आया, और बोला कि आप रथपर बैठिये।'

यह वर्णन स्पष्ट सिद्ध करता है कि भारतीय विजयी सम्राटोंका स्वागत स्वर्गमें भी किस प्रकार किया जाता था। यहां प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों किया जाता था? भारतीय वीरोंका स्वागत तिब्बतकी देव जातीके लोग क्यों करते थे? इसका उत्तर देनेके लिये हमें स्वर्गधामका अधिक विचार करना चाहिये—

स्वर्ग धाम।

इस शब्दमें 'धाम' शब्द विशेष महत्त्व रखता है। धामका अर्थ है 'घर' (Home) निवास स्थान, आश्रयका स्थान आदि। स्वर्ग ही अपना घर है। स्वर्गको ही अपना सच्चा घर ये लोग मानते थे। यहां विचार करना चाहिये कि भारत देशमें आकर बडे बडे पराक्रम करनेवाले वीरपुरुष हिमालयके परे अपना घर क्यों मान रहे थे? किस अवस्थामें ऐसा मानना संभवनीय हो सकता है? यह बडी विचारणीय बात है और इसके खुल जानेसे बडी इतिहासिक खोज होना संभव है।

उक्त शंकाकी निवृत्ति करनेके लिये तथा उस अति प्राचीन कालकी इतिहासिक बातका ज्ञान होनेके लिये हम एक उदाहरण लेते हैं– इस समय इंग्लैंडके वीर इस हिंदुस्थानमें आते हैं, यहां शासनका कार्य करते हैं, वृद्ध होनेके पश्चात् पेनशन लेकर अपने धाम (Home) में जाते हैं और अंतिम समय अपने देशमें जाकर रहते हैं। अंग्रेज जबतक इस देशमें रहकर साम्राज्य चलानेका कार्य करते रहते हैं, तबतक हिंदुस्थानको अपना धाम (Home) नहीं समझते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्युत इंग्लैंडको ही अपना धाम सदा मानते हैं। कई बडे बडे अधिकारी विशेष कार्य करके जिस समय अपने इंग्लैंडमें वापस जाते हैं उस समय उनके विशेष विशेष कार्यके अनुकूल उनका सत्कार इंग्लैंडके किनारेपर किया जाता है।

यह बात जो आजकल अपने देशके संबंधमें हो रही है यदि पाठक ठीक विचारकी दृष्टिसे देखेंगे तो उनको प्राचीन समयकी बात भी इसी प्रकार प्रत्यक्ष हो जायगी। देखिये—

तिब्बतकी देवजाती अथवा देवयोनी जातीके वीर पुरुष उस समयके भारतवर्षमें आते थे, यहां शौर्य वीर्यादिके विशेष विशेष और महान महान कार्य करते थे अपने साम्राज्यका विस्तार करते थे, यहां विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करते थे और वृद्ध अवस्थामें अपने स्वर्गधाम (Home) में जाकर रहते थे। जिस समय ये वीर पुरुष अपने स्वर्गधाममें वापस जाते थे उस समय वहांके उनके पूर्व संबंधी, पूर्व परिचित अथवा स्वर्ग राज्यके अधिकारी उनकी योग्यताके अनुकूल उनका आदर और सत्कार करते थे और उनको यथायोग्य स्थानमें आदरके साथ रखते थे।

धर्मराज आदि पाण्डवोंका जन्म हिमालयकी पहाडियोंकऊपर तिब्बत निवासी देवजातीके वीरोंके वीर्यसे हुआ था। बालपन भी वहां ही व्यतीत हुआ था। तारुण्यके समय वे आर्यावर्तमें उतरे थे। आर्यावर्तमें आकर इन वीरोंने अनेक पराक्रम किये, अनेक विजय प्राप्त किये, साम्राज्य बढाया और वृद्धापकालमें अपने पुत्रोंपर राज्यका भार सौंपकर स्वयं अपने स्वर्गधाममें वापस चले गये। इस वापस होनेके समय स्वर्गके देवजन सम्राट् धर्मराजका आदर सत्कार करनेके लिये सन्मुख आये थे। यह वर्णन स्पष्ट बता रहा है कि तिब्बत निवासी कई मानवजातियोंका भारतवर्षके साथ उस समयमें संबंध किस प्रकारका था। विजयके इच्छुक, साम्राज्यकी इच्छा करनेवाले तथा यज्ञको चाहनेवाले हिमालयके रहनेवाले वीर लोग भारतवर्षमें आते थे और यहां युद्धादि करके अपनी इच्छानुसार अपने उपभोग भोगकर बुढापेमें अपने निज धाम त्रिविष्टपमें जाकर रहते थे। इसीलिये कहा जाता था कि स्वर्गधाम 'भोगभूमि' है और भारतवर्ष 'कर्मभूमि' है।

आजकल यदि यही परिभाषा वर्ती जायगी तो हम ऐसा कह सकते हैं कि इस समय अंग्रेजोंके लिये हिंदुस्थान 'कर्मभूमि' है और इंग्लैंड 'भोगभूमि' है। अंग्रेज हिंदुस्थानमें आकर यहां अपना शासनका कार्य करते हैं और इस कर्मका फल इंग्लैंडमें जाकर पेन्शनके रूपमें भोगते रहते हैं। प्राचीनकालमें भोगोंकी रीति कोई अन्य होगी, परंतु उन सब रीतियोंका तात्पर्य एक ही है।

भारतीयोंकी दुर्बलता।

यदि उस अतिप्राचीन कालके भारतवर्षके लोगोंके विषयमें हम विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनको उस कालकी सब जातियां 'निर्बल' समझती थीं। जिस समय रावणने वर मांगे थे उस समय राक्षस, देव, पिशाच, भूत आदिकोंसे अवध्यता मांगी थी, भारतीय मनुष्योंसे अवध्यत्व मांगना भी उन्होंने उचित न समझा था !!! राक्षस, देव, पिशाच और भूत इन जातीयोंके स्थान निर्देश हमने इससे पूर्व निश्चित किये ही हैं और भारतवर्ष मानव जातीका देश प्रसिद्ध है। इस भारतवर्षीय मानवजातीकी दुर्बलताके कारण उनसे अवध्यत्वकी शर्तें लगाना रावणने उचित भी नहीं समझा। क्योंकि किसी राक्षसको भारतीय मनुष्य मार सकेंगे यह बात उसके स्वप्नमें भी नहीं आई होगी !!!

जिस समय भीमने बकासुरका वध किया उस समय वहांके लोग कहने लगे कि यह 'अ-मानुष कर्म' है अर्थात् भारतवर्षके मनुष्य इसको कर नहीं सकते—

तत्राजग्मुर्बकं द्रष्टुं सस्त्रीवृद्धकुमारकाः।
ततस्ते विस्मिताः सर्वे कर्म दृष्ट्वाऽतिमानुषम्॥
(म. भा. आ.दि. १६६।१२)

'वहाँ मरे हुए बक राक्षसको देखनेके लिये बाल वृद्ध और स्त्रियां अर्थात् सब लोग आये, उन्होंने वह अ-मानुष कर्म देखा और आश्चर्य किया।'

बकासुरकी पीडा भारतीय मनुष्योंसे दूर नहीं हो सकती यह विचार वहांके लोगोंके मनमें दृढ जम गया था, इस विषयमें निम्न श्लोक देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न तु दुःखमिदं शक्यं मानुषेण व्यपोहितुम्।
(म० भा० आदि १६२।२)

बकासुरसे होनेवाला "यह कष्ट भारतीय मनुष्यके द्वारा दूर नहीं हो सकता।" इस वाक्योंसे यह स्पष्ट होता है कि भारतवर्षकी मानवजाती अपने आपको अन्य जातीयोंके सम्मुख बडी दुर्बल अनुभव कर रही थी।

"अ-मानुष, अति-मानुष" कर्मका अर्थ ही यह है कि जो कर्म राक्षस, असुर, देव, भूत, पिशाच आदि तो कर सकते हैं, परंतु भारतके मनुष्य कर नहीं सकते। इस समय जैसा कहते हैं कि यंत्रादि रचनाका कर्म जर्मन, फ्रेंच, अमरिकन या अंग्रेज करे तो करे परंतु हिंदुस्थानी नहीं कर सकता, उसी प्रकार इस अतिप्राचीन कालमें कहा जाता था कि यह कार्य असुर, राक्षस, देव, पिशाच, यक्ष, भूत आदि करे तो करे परंतु भारतीय मनुष्य नहीं कर सकता। दोनोंका तात्पर्य भारतीय मनुष्योंकी दुर्बलतामें ही है। और इसीलिये भारतीय मनुष्योंको कोई गिनतीमें लेने योग्य समझता ही नहीं था। रावणने अपने वरमें मनुष्योंसे अवध्यत्वकी याचना करनेकी जो उपेक्षा की थी उसका कारण भी उस समयके मनुष्योंकी दुर्बलतामें ही है। इसी प्रकार अन्यान्य राक्षसोंके भाषणोंमें भी उस समयके भारतीय मानवोंकी दुर्बलता ही टपकती है। परंतु उन सबका यहां विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

पांडवोंमें देवोंका वीर्य था इसलिये पांचों पांडव अपने आपको अन्य भारतीयोंसे उच्च समझते थे और अन्योंको हीन समझते थे, कर्ण भी देववीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण अपने हो घमंडमें था। इस सब इतिहासका विचार करनेसे पता चलता है कि पांडवोंके पूर्वकालमें यद्यपि भारतमें बहुत वीर भी हो चुकते थे और ऐसे ऐसे सम्राट् हो चुके थे कि जिनके नाम इतिहासमें तेजसे परिपूर्ण दिखाई देते हैं, तौ भी भारतीय सर्व साधारण जनताकी वैयक्तिक शक्तिके विषयमें किसी भी उस कालके विदेशी मनुष्यके मनमें बहुत बडा आदर नहीं था और इसके विरुद्ध भारतीय जनताके अन्दर राक्षस, देव, भूत आदि उस समयकी विदेशीय जातियोंके विषयमें वैयक्तिक शक्तिके संबंधमें बडा भारी भीतिपूर्ण भाव था। यदि किसी नगरमें कोई राक्षस, देव या भूत जातीका आदमी आ जाय तो उसे कोई प्रतिबंध नहीं करता था। राक्षस तो इस जातीको दबाते ही थे, भूतलोग अर्थात् इस समयके भूतानी लोग भी डराते थे और देव भी इनसे जो चाहे सो पदार्थ ले जाते थे। परंतु इन सबमें देवजातीके लोग अन्योंके समान उपद्रवी नहीं थे; नरम दिलवाले होनेके कारण उस समयके मनुष्योंको वे इतने सताते नहीं थे। यही कारण है कि राक्षस, असुर, भूत, पिशाचके विषयमें बडा डर भारतीयोंके विषयमें बसता था, वैसा डर देवजातीके विषयमें नहीं था और इसी कारण आगे जाकर देवजातीके साथ भारतवासियोंकी मित्रता भी हुई थी।

तिब्बत, हिमालय, असुरदेश, तथा भूत देशके लोग आकर भारतमें रहते थे और अपने अपने छोटे मोटे राज्य भी स्थापन करते थे, बाणासुरका राज्य आजकलके रामपुर रिसायतमें था, यह रामपुर सिमला जिल्हेमें है, इसी प्रकार मारवारमें घुंधु रहता था, नासिक और दक्षिणकी ओर लंकामें रावण और उसके अनुयायी खर तथा दूषणोंने अपना काम जमाया था, पश्चिम समुद्रपर भी निवात-कवचादि अन्यान्य राक्षस आ बसे थे। परंतु शुक्राचार्यके सिवाय एक भी भारतीय द्विज असुरोंके देशमें जाकर अपना घर करके नहीं रहा था, यह भी उस समयके भारतीयोंकी कमजोरी ही है।

शुक्राचार्य भी जो असुर देशमें जाकर रहे थे वह भी आचार्य होकर अर्थात् पाठशालाके अध्यापक बनकर गये थे, न कि विजयी योद्धा बनकर गये थे। इसके अतिरिक्त जहां वृषपर्वाकी राजधानीमें शुक्राचार्य अध्यापक बनकर गये थे वह स्थान भी देवोंके राज्यसे और भारतीयोंके राज्यसे समीप ही था, अर्थात् शुक्राचार्य भी राक्षसोंके देशोंके मध्यमें नहीं पहुंचे थे। और साथ ही साथ यह भी शुक्राचार्य कहते थे, विशेषतः कचसे कहते थे कि यह 'असुरोंका देश है, यहां संभालकर रहना चाहिये," अर्थात् शुक्राचार्य भी बेडर होकर असुर देशमें रहते नहीं थे।

(१) संध्याकाल होते ही घरमें वापस आना।
(२) घरसे बहुत दूर भ्रमणके लिये भी न जाना।
(३) असुरोंके संघमें अकेले न जाना,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६१२ सं या दानूंनि येमथु—र्दिव्याः पार्थिवीरिषः । नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ॥ ६ ॥
६१३ अधि या बृहतो दिवोऽ ऽभि यूथेव पश्यतः । ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥ ७ ॥
६१४ ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू । धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥ ८ ॥
६१५ अक्ष्णश्चिद् गातुवित्तरा ऽनुल्बणेन चक्षसा । नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥ ९ ॥
६१६ उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या । उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥ १० ॥
६१७ ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः । अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥

अर्थ—[६१२] हे मित्र और वरुण! (या) जो तुम दोनों (दानूनि) देने योग्य दानोंको (सं येमथुः) प्रदान करते हो, (दिव्या पार्थिवीः इषः) दिव्य और पार्थिव अन्नोंको प्रदान करते हो। ऐसे (वां) तुम दोनोंकी (नभस्वतीः वृष्टयः) आकाशसे गिरनेवाली वृष्टियां (चरन्तु) सेवा करें ॥ ६ ॥

[६१३] (ऋतावाना सम्राजा) सत्य मार्गके अनुयायी, उत्तम तेजस्वी (नमसे हिता) नम्रभावके मनुष्योंका हित करनेवाले (या) जो मित्र और वरुण (बृहतः दिवः) महान् द्युलोकसे (यूथा इव) जैसे नेता अपने अनुयायियोंके समूहोंको देखता है, उसी तरह (अधि अभि पश्यतः) अच्छी प्रकारसे देखते हैं ॥ ७ ॥

[६१४] (ऋतावाना सुक्रतू) सत्यका पालन करनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले दोनों मित्र और वरुण (साम्राज्याय) उत्तमतासे शासन करनेके लिए ही (नि सेदतुः) अपने स्थानपर बैठे हैं। (धृतव्रता क्षत्रिया) व्रतोंको धारण करनेवाले तथा संकटोंसे लोगोंकी रक्षा करनेवाले दोनों देवोंने (क्षत्रं आशतुः) बल प्राप्त किया ॥ ८ ॥

[६१५] (अक्ष्णः चित् गातुवित्तरा) आंखोंवालोंकी अपेक्षा भी अधिक उत्तमतासे सन्मार्गको जाननेवाले (निमिषन्ता) सबको जागृत करनेवाले (निचिरा) अत्यन्त प्राचीन मित्र और वरुण दोनों देव (अनुल्बणेन चक्षसा) अत्यन्त दुःसह तेजसे (नि चिक्यतुः) बहुत पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

[६१६] (उत) और (देवी अदितिः) तेजसे युक्त अदिति माता (नः) हमारी रक्षा करे, (नासत्या उरुष्यतां) सत्यका पालन करनेवाले अश्विनीदेव हमारी रक्षा करें, (वृद्धशवसः मरुतः उरुष्यन्तु) बढे हुए बलवाले मरुत् हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

[६१७] हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले मरुतो! (ते) वे तुम (नावं) नावकी तरह (दिवानक्तं नः उरुष्यतः) रातदिन हमारी रक्षा करो, तथा (अरिष्यन्तः) हिंसित न होते हुए हम (पायुभिः सचेमहि) संरक्षणके साधनोंसे संयुक्त हों ॥ ११ ॥

भावार्थ— आकाशसे समय पर बरसात गिरे तथा उस बरसातसे द्युलोकमें और पृथ्वीलोकमें उत्पन्न होनेवाले अन्न तथा अन्य दान भी हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

मित्र और वरुण दोनों देव सदा सत्य मार्गसे चलनेवाले, उत्तम तेजस्वी, नम्रभावसे युक्त मनुष्योंका हित करनेवाले है। वे दोनों द्युलोकपरसे जगत्का निरीक्षण करते हुए उसका संचालन करते हैं ॥ ७ ॥

सत्यके मार्गपर चलनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य ही उत्तमतासे शासन कर सकता है और वही साम्राज्यके सर्वोच्च शासनपर बैठ सकता है। ऐसा उत्तम व्रतधारी शासक जब अपनी प्रजाओंको संकटोंसे बचाता है, तब उसे सारी प्रजाओंका बल प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

आंखोंवाले प्राणियोंकी अपेक्षा भी ये दोनों देव अपने मार्गको अधिक उत्तमतासे जान लेते हैं, ये ही देव सबको जागृत करके अपने अपने कामोंमें संयुक्त करते हैं। इनका तेज बहुत दुस्सह है, इसी तेजके कारण वे सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

तेजसे युक्त अदिति, अश्विनी कुमार तथा उत्तम बलवाले मरुद्गण हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

मरुतगण दिनरात हमारी रक्षा करें और उनके द्वारा सुरक्षित होकर हमारा उत्तम रीतिसे पालन होता रहे ॥ ११ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६१८ अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे । श्रुधि स्वयावन् त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥
६१९ तद् वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् । मित्रो यत् पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥
६२० उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना । इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥ १४ ॥
६२१ ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् । तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥
६२२ अपमेकं इत्था पुरू रुं चष्टे वि विश्पतिः । तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥ १६ ॥
६२३ अनु पूर्वीण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥ १७ ॥

अर्थ— [६१८] (अरिष्यन्तः वयं) अहिंसित होते हुए हम (अघ्नते सुदानवे) अहिंसक और उत्तम दान देनेवाले (विष्णवे) विष्णुके लिये हवि देते हैं। हे (स्वयावन् सिन्धो) स्वयं प्रवाहित होनेवाली नदी! (पूर्व चित्तये) हमारी इच्छाओंको सबसे पहले जाननेके लिए तू हमारी प्रार्थना (श्रुधि) सुन ॥ १२ ॥

[६१९] (यत् मित्रः वरुणः) जिस धनकी मित्र, वरुण (यत् अर्यमा पान्ति) जिस धनकी अर्यमा रक्षा करते हैं, (तत् वरिष्ठं) उस अत्यन्त श्रेष्ठ (गोपयत्यं) सबकी रक्षा करनेवाले तथा (वार्यं) संग्रहणीय धनको हम (वृणीमहे) मांगते हैं ॥ १३ ॥

[६२०] (उत) और (नः) हमारे (तत्) उस धनकी रक्षा (अपां सिन्धुः) जलसे भरी हुई नदियां, (मरुतः) मरुत् गण (तत् अश्विना) उस धनकी रक्षा अश्विदेव (इन्द्रः विष्णुः) इन्द्र विष्णु (मीढ्वांसः सजोषसः) मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाले तथा साथ साथ रहनेवाले देव करें ॥ १४ ॥

[६२१] (ते हि वनुषः) वे पूजाके योग्य (भूर्णयः) वेगवान् गतिवाले (नरः) उत्तम नेता देव (कयस्य चित् अभिमातिं) किसी भी शत्रुके अभिमानको उसी प्रकार (प्रतिघ्नन्ति) तोड देते हैं, जिस प्रकार (तिग्मं क्षोदः न) तेज जलका प्रवाह वृक्षोंको तोड देता है ॥ १५ ॥

[६२२] मित्रावरुणमेंसे (एकः) एक (विश्पतिः) प्रजाओंका पालक (अयं) यह मित्र (इत्था) इस प्रकार (पुरु उरु) बहुतसे और विस्तृत विश्वको (वि चष्टे) देखता है, विश्वका निरीक्षण करता है, हे मनुष्यो! हम (वः) तुम्हारे कल्याणके लिए (तस्य व्रतानि चरामसि) उस मित्रके व्रतोंका आचरण करते हैं ॥ १६ ॥

[६२३] (साम्राज्यस्य दीर्घश्रुत् वरुणस्य) सबपर शासन करनेवाले बहुत प्रसिद्ध वरुणके (क्षोक्या व्रता) इस विश्वरूपी घरका हित करनेवाले व्रतोंका (अनु सश्चिम) आचरण करते हैं, उसी तरह (मित्रस्य) मित्रके व्रतोंका भी आचरण करते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— हम उत्तम दाता और अहिंसक विष्णुकी स्तुति करते हैं अतः विष्णुके साथ अन्य देवगण भी हमारी तुच्छ स्तुतियोंको सुनें ॥ १२ ॥

धन ऐसा हो कि जो देवोंके द्वारा रक्षित हो। सत्यमार्गसे अर्जित धनकी ही देव रक्षा करते हैं। अतः ऐसा ही धन मनुष्य अर्जन करे, ऐसा ही धन सबसे श्रेष्ठ और उस धनवानकी रक्षा करनेवाला होता है ॥ १३ ॥

हमारे उस श्रेष्ठ धनकी रक्षा सिन्धु, अश्विनौ, इन्द्र विष्णु आदि देव करें ॥ १४ ॥

देवों गति बहुत ही वेगवान् होनेके कारण उनके आगे कोई भी शत्रु नहीं टिक पाता अपितु सभी शत्रुओंका अभिमान उसी तरह टूट जाता है, जिस तरह वेगवान् जलप्रवाहकी चपेटमें आकर बडे बडे वृक्ष भी टूटकर गिर जाते हैं। इसी तरह मनुष्यको भी वेगयुक्त शक्तिसे युक्त होना चाहिए ॥ १५ ॥

मित्र और वरुण इन दोनों देवोंमेंसे एक देव मित्र सभी प्रजाओंका पालक होकर इस विस्तृत जगत्का निरीक्षण करता है। उस मित्रके व्रत-नियमोंके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है ॥ १६ ॥

सबपर शासन करनेवाले प्रसिद्ध वरुणके नियम इस संसारका हित करनेवाले हैं, उसी तरह मित्रके नियम भी जगत्के लिए हितकारक हैं, ऐसे मित्र और वरुणके नियमोंका हम आचरण करें ॥ १७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६२४ परि यो रश्मना दिवो ऽन्तान् मम्रे पृथिव्याः । उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥ १८ ॥
६२५ उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः । अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥ १९ ॥
६२६ वचो दीर्घप्रसद्मनी—शे वाजस्य गोमतः । ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ २० ॥
६२७ तत् सूर्य रोदसी उभे द्रोषा वस्तोरुप ब्रुवे । भोजेष्वस्मा अस्युचरा सदा ॥ २१ ॥
६२८ ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥ २२ ॥
६२९ ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥ २३ ॥

अर्थ—[६२४] (यः) जिस मित्रने अपनी (रश्मना) मापनेकी डोरीसे (दिवः पृथिव्याः अन्तान् परि मम्रे) द्यु और पृथिवीके अन्तको माप लिया, वह और वरुण (उभे) ये दोनों देव (महित्वा) अपनी महिमासे (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी लोकको (आ पप्रौ) पूर्ण कर देते हैं ॥ १८ ॥

[६२५] (स्यः सूर्यः) वह सूर्य (दिवः शरणे) द्युलोकरूपी घरमें जब (ज्योतिः उत् अयंस्त) अपनी ज्योति या तेजको ऊपर प्रकट करता है, तब (अग्निः न शुक्रः) अग्निके समान तेजस्वी वह सूर्य (समिधानः) और तेजस्वी होनेके कारण (आहुतः) सबके द्वारा बुलाया जाता है ॥ १९ ॥

[६२६] हे मनुष्य ! (दीर्घप्रसद्मनि) विशाल यज्ञगृहमें (वचः) तू स्तोत्र कह । वह मित्र (गोमतः वाजस्य) गायसे युक्त अन्नका (ईशे) स्वामी है, (हि) वही (अविषस्य पित्वः) विषसे रहित अन्नको (दावने) देनेमें (ईशे) समर्थ है ॥ २० ॥

[६२७] मैं (तत् सूर्य) उस सूर्यके तेज तथा (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोककी (उप ब्रुवे) स्तुति करता हूं । हे देव ! (भोजेषु) भोजनके विषयमें तू (सदा) सदा (अस्मान् अभि उत् चर) हमारी ओर ही गति कर ॥ २१ ॥

[६२८] (उक्षण्यायने) बैलोंके समूहसे युक्त (हरयाणे) तथा घोड़ोंके समूहसे युक्त (सुषामणि) यज्ञमें हमने (ऋज्रं) वेगसे चलनेवाले (रजतं युक्तं) चांदी सोनेसे सुशोभित (रथं असनाम) रथको प्राप्त किया ॥ २२ ॥

[६२९] (हरीणां कृत्व्यानां अश्व्यानां) तेजस्वी, कर्ममें कुशल घोड़ोंके समूहमें (मे) मुझे (ता) वे (नितोशना) शत्रुओंके विनाशक तथा (नृवाहसा) नेताओंको ले जानेवाले दो घोड़े (नु) निश्चयसे मिले ॥ २३ ॥

भावार्थ— मित्र अपनी मापनेकी डोरी अर्थात् किरणोंसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको नाप लेता है और मित्र और वरुण ये दोनों देव द्यु और पृथ्वीको अपनी महिमासे भर देते हैं ॥ १८ ॥

जब वह सूर्य द्युलोकमें ऊपर उठकर अपने तेजको प्रकट करता है, तब उस सूर्यका तेज अग्निके समान देदीप्यमान हो जाता है, उसी समय यज्ञ शुरु होते हैं, जिनमें सूर्यके लिए आहुतियां दी जाती हैं ॥ १९ ॥

वही मित्र सभी तरहके अन्नोंका स्वामी होनेके कारण उत्तम और विषरहित अन्न देनेमें वही समर्थ है, अतः उसीकी स्तुति करनी चाहिए । सूर्य अन्नका स्वामी है । सूर्यकिरणोंके कारण ही अन्नमें स्थित जन्तु आदि नष्ट होकर अन्न विषरहित बनता है । सूर्यकी किरणोंको पीनेवाले अन्न अधिक पुष्टिकारक होते हैं ॥ २० ॥

मैं सूर्यके तेज तथा दोनों लोकोंकी स्तुति करता हूं, अतः वे देव हमें उत्तम अन्न प्रदान करें ॥ २१ ॥

बड़े बड़े यज्ञ जब किए जाते हैं, तब उसका विस्तार बहुत होता है और उसमें सम्मिलित होनेवालोंकी संख्या अत्यधिक होनेके कारण उस यज्ञस्थलके आसपास आनेवालोंके घोड़ों और बैलोंका समूह हो जाता है । ऐसे यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको रथ आदि भी दक्षिणामें दिए जाते हैं ॥ २२ ॥

तेजस्वी और कर्मकुशल घोड़ोंके समूहमें भी वे ही घोड़े अधिक प्रशंसनीय होते हैं कि जो शत्रुओंके विनाशक और वीर क्षत्रियोंको ले जानेवाले अर्थात् बलशाली होते हैं ॥ ॥ २३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६३० स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती । मही वाजिनावर्वन्ता सचासनम् ॥ २४ ॥

[२६]

(ऋषिः- विश्वमना वैयश्वः, व्यश्वो वाङ्गिरसः । देवता- अश्विनौ, २०-२५ वायुः । छन्दः- उष्णिक्: १६-१९, २१, २५ गायत्री; २० अनुष्टुप् ।)

६३१ युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु । अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥

६३२ युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या । अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥

६३३ ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू । पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥ ३ ॥

६३४ आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा । उप स्तोमान् तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥ ४ ॥

६३५ जुहुराणा चिदश्विना ऽऽमन्यथां वृषण्वसू । युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६३०] मैंने (महः) महान् दाताके पाससे (न विष्ठया मती) अत्यन्त नवीन स्तुतिकी सहायतासे (स्मदभीशू) सुन्दर लगामोंवाले (कशावन्ता) उत्तम चाबुकवाले (विप्रा) ज्ञानसे युक्त (अर्वन्ता) वेगसे दौडनेवाले (वाजिना) दो बलवान् घोडोंको (सचा असनम्) एक साथ प्राप्त किया ॥ २४ ॥

[२६]

[६३१] हे (अतूर्त-दक्षा) ऐसे बल धारण करनेवाले कि जिसे दूसरा कोई नष्ट न कर सके और (वृषणा) बलवान् तथा (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (सूरिषु) विद्वानोंमें (सधस्तुत्याय) एकही साथ प्रशंसा करनेके लिए (युवोः रथं उ) तुम्हारे रथको ही (सु हुवे) भलाभाँति बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[६३२] हे (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले ! (वृषणा) बलिष्ठ तथा (वृषण्वसू) धनकी वृष्टि करनेवाले अश्विदेवों ! (युवं) तुम (सुसाम्ने महे तने) सुसामन्के लिए बडा धन मिले इस इच्छासे (अवोभिः याथः) संरक्षणोंसे युक्त होकर यात्रा करते हो उसी तरह मेरे लिए भी प्रयत्न करो, ऐसी प्रार्थना (वरो) हे वरु नरेश ! तू कर ॥ २ ॥

[६३३] हे (वाजिनी-वसू) बलयुक्त धनवाले अश्विदेवो ! (क्षपः अति) रात्रीके बीत जानेपर अद्य ता वां) आज उन विख्यात तुम्हें जोकि (पूर्वीः इषः इषयन्तौ) बहुतसी अन्नसामग्रियोंको चाहते हो (हव्येभिः हवामहे) हवनीय वस्तुओंके प्रदानके साथ हम बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[६३४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वां वाहिष्ठः) तुम्हें खूब जगह जगह पहुँचानेवाला और (श्रुतः) विख्यात रथ (आ यातु) इधर चला आये; पश्चात् (तुरस्य स्तोमान्) शीघ्रतया कार्य करनेवालेके स्तोत्रोंका (श्रिये) शोभाके लिए (उप दर्शथः) समीप जाकर दर्शन लो ॥ ४ ॥

[६३५] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (जुहुराणा चित् आ मन्यथां) कुटिल प्रकृतिके लोगोंको भी मान्यता दे दो क्योंकि (युवं रुद्रा हि) तुम तो शत्रुको रुलानेवाले हो और (द्विषः अति पर्षथः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पार करके आगे बढते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— घोडे वही उत्तम होते हैं, जो बलवान्, वेगवान् और ज्ञानी हों अर्थात् समयके अनुसार काम करनेवाले हों ॥ २४ ॥

अश्विदेव ऐसे बलको धारण करते हैं कि जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता । इसीलिए विद्वानोंमें इनकी स्तुति होती है ॥ १ ॥

हे असत्यसे दूर रहकर धनकी वृष्टि करनेवाले देवो ! जिस तरह उत्तम सामगान करनेवालेकी रक्षा करते हो, उसी तरह तुम मेरी भी करो ॥ २ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! रातके बीत जाने पर प्रभातमें हम यज्ञ करके उसमें तुम्हें हविको ग्रहण करनेके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

अश्विदेवोंका रथ इन्हें ये जहां जाना चाहते हैं, वहां पहुंचा देता है और ये देव सर्वत्र जाकर स्तुति श्रवण करते हैं ॥ ४ ॥

हे देवो ! तुम दोनों शत्रुओंको रुलानेवाले हो और द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पराभूत करके आगे बढ जाते हो, उसी तरह जो कुटिल प्रकृतिके लोग हैं, उन्हें भी शत्रु मानकर उन्हें रुलाओ ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६३६ दस्रा हि विश्वमानुषङ् मक्षूभिः परिदीयथः । धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥
६३७ उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह । मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥
६३८ आ मे अस्य प्रतीव्यं मिन्द्रनासत्या गतम् । देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥
६३९ वयं हि वां हवामहे उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् । सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥
६४० अश्विना स्तुषे स्तुहि कुवित् ते श्रवतो हवम् । नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥ १० ॥
६४१ वैयश्वस्य श्रुतं नरो तो मे अस्य वेदथः । सजोषसा वरुणो मित्रा अर्यमा ॥ ११ ॥

अर्थ— [६३६] हे (दस्रा) दर्शनीय ! (मधु-वर्णा) मधुर वर्णवाले ! (धियं-जिन्वा) बुद्धि या कर्मोंका ठीक पालन प्रीणन- करनेवाले ! (शुभः पती) शुभ चालोंके अधिपति ! अश्विदेवों ! (मक्षुभिः) शीघ्रगामी घोडोंके साथ (विश्वं आनुषक्) सबके समीप लगातार (परि दीयथः) चतुर्दिक् चले जाते हो इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

[६३७] हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न ! (अन्-अपच्युता) न परभ्रष्ट हुए (सुवीरौ) अच्छे वीर अश्विदेवों ! (नः) हमारे समीप (विश्वपुषा रायां सह) सबको पुष्टि करनेवाले धनसे युक्त होकर (उप यातं) आओ ॥ ७ ॥

[६३८] हे (इन्द्र नासत्या) इन्द्र एवं सत्यभक्त अश्विदेवों ! तुम (देवा) दानी और (देवेभिः सचनः तमा) विद्वानोंसे अत्यन्त अधिक मात्र में युक्त होनेवाले हो, अतः (अद्य मे अस्य प्रतीव्यं) आज मेरे इस स्तोत्रके प्रत्युत्तरके रूपमें (आ गतं) इधर पधारो ॥ ८ ॥

[६३९] हे (विप्रौ) ज्ञानी अश्विदेवों ! (वयं व्यश्ववत्) हम व्यश्वके समान ही, (उक्षण्यन्तः) इच्छा करते हुए (वां हि हवामहे) तुम्हें ही बुलाते हैं, इसलिए (सुमतिभिः इह) अच्छी बुद्धियों एवं विचारोंसे युक्त होकर इधर (उप आ गतं) समीप आओ ॥ ९ ॥

[६४०] हे ऋषिवर ! तू अश्विदेवोंकी (सु स्तुहि) भलीभाँति सराहना कर, क्योंकि वे दोनों (ते हवं) तेरी पुकारको (कुवित् श्रवतः) बहुत बार सुन लेते हैं, (उत) और (पणीन्) स्वार्थी व्यापारियोंको एवं (नेदीयसः) समीप पहुँचे हुए शत्रुओंको (कूळयातः) विनष्ट कर डालते हैं ॥ १० ॥

[६४१] हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (वैयश्वस्य श्रुतं) व्यश्वके पुत्रके कथनको सुन लो (उत) और (अस्य मे वेदथः) इस मेरे भाषणको ठीक तरह जान लो; (वरुणः मित्रः अर्यमा) वरुण, मित्र एवं अर्यमा (सजोषसा) इकट्ठे हो इधर आजायँ ॥ ११ ॥

भावार्थ— दोनों अश्विदेव मधुर वाणीवाले, बुद्धिको उत्तम ज्ञानसे तृप्त करनेवाले, शुभ कर्मोंके स्वामी और सर्वत्र संचार करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

हे ऐश्वर्यशाली तथा पदभ्रष्ट न होनेवाले वीर अश्विदेवो ! तुम सब तरहका पोषण करनेवाले धनसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ ७ ॥

हे ऐश्वर्यशाली तथा सत्यकी भक्ति करनेवाले देवो ! तुम विद्वत्तासे अत्यधिक युक्त हो, अतः तुम हमारे बुलाने पर आओ ॥ ८ ॥

हे ज्ञानी अश्विदेवो ! हम व्यश्वके समान ही उत्तम ऐश्वर्यको पानेकी इच्छा करते हुए तुम्हें बुलाते हैं, अतः उत्तम बुद्धि एवं विचारोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

हे ज्ञानी ! तू अश्विनौ देवोंकी अच्छी तरह स्तुति कर, क्योंकि वे दोनों देव तेरी प्रार्थनाको अनेक बार सुनकर स्वार्थी व्यापारियों और शत्रुओंको नष्ट कर चुके हैं । राज्यमें अधिक मुनाफा करनेवाले जो स्वार्थी व्यापारी हों, उन्हें नष्ट कर देना चाहिए ॥ १० ॥

हे अश्विदेवों ! मेरी इस प्रार्थनाको ठीक तरह सुनो और वरुण, मित्र और अर्यमा एक साथ मिलकर मेरे पास आवें ॥ ११ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६४२ युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः । अहरहर्धृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥
६४३ यो वां यज्ञेभिरावृतो ऽधिवस्त्रा वधूरिव । सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥ १३ ॥
६४४ यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् । वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥
६४५ अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् । विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥ १५ ॥
६४६ वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥
६४७ यदुदो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे । श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥

अर्थ— [६४२] हे (धिष्ण्या वृषणा) प्रशंसाई एवं इच्छापूर्ति करनेहारे अश्विदेवो ! (सूरिभिः) विद्वानोंको (युवानीतस्य युवा दत्तस्य) तुम लाकर जो धन दे चुके हो उसे (अहः अहः) हरदिन (मह्यं शिक्षतं) मुझे दे डालो ॥ १२ ॥

[६४३] (अधि-वस्त्रा वधूः इव) कपडे ओढी हुई नववधूके समान (यः) जो मानव (वां यज्ञेभिः आवृतः) तुम्हारे यज्ञोंसे पूर्णतया ढका हुआ हो, उसे (सपर्यन्ता) अभीष्ट चीजोंके प्रदानसे पूजित करते हुए अश्विदेव (शुभे चक्राते) अच्छी दशामें वह रहे ऐसा प्रबन्ध कर देते हैं ॥ १३ ॥

[६४४] हे अश्विदेवों ! (यः) जो (उरुव्यचस्तमं) अत्यन्त विस्तीर्ण तथा (नृ-पाय्यं) नेताओंद्वारा सुरक्षित रखनेयोग्य स्थानको (वां चिकेतति) तुम्हारे लिए बतलाता है, उसके (वर्तिः) घरतक (अस्मयू) हमारी चाह रखनेवाले तुम (परि यातं) चारों ओरसे चले जाओ ॥ १४ ॥

[६४५] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (नृपाय्यं वर्तिः) नेताओंसे रक्षणीय घरको (अस्मभ्यं) हमारे हितके लिए (सु यातं) भलीभाँति जाओ, क्योंकि तुम (गिरा यज्ञं) भाषणसे यज्ञको (वि-षु-द्रुहा इव ऊहथुः) सभी शत्रुओंके वधकर्ता बाणकी तरह उठा ले गये ॥ १५ ॥

[६४६] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (हवानां) तुम्हें जो बुलावे भेजे जाते हैं उनमें (वां वाहिष्ठः) तुम्हें अत्यधिक मात्रामें प्राप्त होनेवाला (स्तोमः दूतः हुवत्) हमारा स्तोत्र दूत बनकर इधर बुलाए और वह (युवाभ्यां) तुम्हें प्रिय (भूतु) प्रतीत हो ॥ १६ ॥

[६४७] हे (अ-मर्त्या) अमर अश्विदेवो ! (यत् दिवः) जो तुम द्युलोकमें (अर्णवे) समुद्रमें (इषः गृहे वा) या अभीष्टके घरमें (मदथः) हर्षित होते हो, परन्तु (मे अदः) मेरा वह भाषण (श्रुतं इत्) तुम अवश्य सुन लेना ॥ १७ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! विद्वान्को तुम जैसा उत्तम धन देते हो, वैसा ही उत्तम धन तुम मुझे भी दो ॥ १२ ॥

जिस तरह नववधू अच्छे कपडोंमें अच्छी तरह लिपटी हुई होती है, उसी तरह जो लोग उत्तम कर्मोंसे युक्त होते हैं वे सदा ही अच्छी दशामें रहते हैं ॥ १३ ॥

जो नेता या उत्तम ज्ञानी मनुष्य अश्विदेवोंके लिए स्थान सुरक्षित रखता है, उसके घर अश्विदेव सदा जानेकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम जिसके भी घर जाते हो, वहां पहुंचकर वहां होनेवाले यज्ञमें इकट्ठे हुए जनसमूहको अपने मधुर भाषणोंसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते हो ॥ १५ ॥

हे अश्विदेव ! जितने भी लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन सबमें हमारी ही स्तुति तुमतक पहुंचे और तुम हमारे पास आओ ॥ १६ ॥

हे अमर अश्विदेवो ! चाहे तुम द्युलोकमें हो, चाहे समुद्रमें या चाहे तुम अपने किसी भक्तके घरमें आनंद कर रहे होओ, तो भी तुम हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे पास चले आओ ॥ १७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६४८ उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् । सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥
६४९ एतया सुकीर्त्या ऽश्विना श्वेतया धिया । वहेथे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥
६५० युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।
आत्मो वायो मधु पिबा ऽस्माकं सवना गहि ॥ २० ॥
६५१ तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवांस्या वृणीमहे ॥ २१ ॥
६५२ त्वष्टुर्जामातरं वय मीशानं राय ईमहे । सुतावन्तो वायुं द्युम्ना जनासः ॥ २२ ॥
६५३ वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु सहस्र्यम् । वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३ ॥

अर्थ— [६४८] (उत) और भी (नदीनां वां वाहिष्ठा) नदियोंमें तुम्हें ही अधिक इष्ट स्थानपर पहुँचानेवाली (स्या श्वेतयावरी) वह शुभ-निर्मल गतिवाली (हिरण्यवर्तनिः) सुवर्णतुल्य तेजस्वी मार्गवाली (सिन्धुः) नदी है ॥ १८ ॥

[६४९] हे (शुभ्र-यावाना अश्विना) निष्कलंक गतिवाले अश्विदेवों ! (एतया सुकीर्त्या) इस अच्छी कीर्तीवाली (श्वेतया धिया) सफेद-निष्कलंक बुद्धिसे तुम दोनों (स्मत् वहेथे) कल्याणकी ओर-जाते हो- शुभ एवं हितप्रद मार्गके पथिक बनते हो ॥ १९ ॥

[६५०] हे (वसो) सबको बसानेवाले वायो ! (त्वं) तू (रथा सहा) रथको खींचनेमें समर्थ दो घोडियोंको (युक्ष्वा) जोड तथा (पोष्या) अच्छी तरहसे पुष्ट दो घोडियोंको (युवस्व) जोड । हे (वायो) वायो ! (आत्) उसके बाद (अस्माकं सवना आ गहि) हमारे यज्ञमें आओ और (नः मधु पिब) हमारे मीठे सोमरसोंको पीओ ॥ २० ॥

[६५१] हे (ऋतः पते) सत्कर्मोंके पालन कर्ता (त्वष्टुः जामाता अद्भुत वायो) त्वष्टाके जामाता अपूर्व वायो ! हम (तव आवां सि वृणीमहे) तेरे संरक्षणके साधनोंकी इच्छा करते हैं ॥ २१ ॥

[६५२] (त्वष्टुः जामातारं ईशानं वायुं) त्वष्टाके जामाता तथा ऐश्वर्यशाली वायुकी (जनासः) हम लोग (राये ईमहे) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते हैं । (वयं) हम सब (द्युम्ना) उसके तेजसे (सुतावन्तः) ऐश्वर्यशाली हों ॥ २२ ॥

[६५३] (वायो) हे वायो ! तुम हमारे पास (दिवः शिवः) दिव्य कल्याणको लेकर (आ याहि) आओ, तथा (सुअहस्र्यं) उत्तम अश्वोंके संघको (वहस्व) चारों ओर ले जाओ । (महः) हे महान् वायो ! तुम (रथे) अपने रथमें (पृथु पक्षसा) महान् बलसे युक्त दो घोडियोंको (वहस्व) जोडो ॥ २३ ॥

भावार्थ— नदियोंमें शुभ्र निर्मल तथा सुनहरे रंगकी प्रवाहवाली सिन्धु नदी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वह नदी ही अश्विनौ देवोंकी हर तरहसे सहायता करती है ॥ १८ ॥

अश्विदेव सदा सन्मार्गसे चलनेवाले हैं, इसीलिए इनकी गति निष्कलंक हैं । यह अपनी कीर्तीवाली तथा कलंकरहित बुद्धिके द्वारा लोगोंको कल्याणके मार्गमें प्रेरित करते हैं ॥ १९ ॥

वायुके कारण ही सब जीवन धारण करते हैं। यह वायुदेव अपनी लहररूपी घोडियोंपर चढकर सर्वत्र संचार करता है और इस मनुष्य जीवनरूपी यज्ञको धारण करता है ॥ २० ॥

वायुदेव उत्तम कर्मोंका पालन करनेवाले हैं । अतः हम चाहते हैं कि उसके संरक्षणके साधन हमें प्राप्त हों ॥ २१ ॥

ऐश्वर्य प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम ऐश्वर्यशाली वायुकी प्रार्थना करते हैं, उस वायुके तेजसे हम समृद्ध और सम्पन्न हों ॥ २२ ॥

हे वायो ! तुम हमें दिव्य कल्याणको प्रदान करो, हम सदा कल्याणके मार्गपर ही चलें । तुम चारों ओर अच्छी तरह संचार करो ॥ २३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६५४ त्वां हि सुष्मरंस्तमं नृषदंनेषु हुमहे । ग्रावांणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥
६५५ स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अंग्रियः । कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥

[२७]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

६५६ अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावांणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥ १ ॥
६५७ आ पशुं गांसि पृथिवीं वनस्पतीन्नुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥ २ ॥
६५८ प्र सू न एत्वध्वरो ऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥

अर्थ— [६५४] हे वायो ! (सुष्मरंस्तमं) अत्यन्त रूपवान् (मंहना अश्वपृष्ठं) और अपने महत्त्वसे सर्वत्र व्याप्त (त्वां) तुम्हें (नृषदनेषु) मानवोंके घरोंमें-यज्ञोंमें (ग्रावाणं न) सोम पीनेके पत्थरके समान (हुमहे) बुलाते हैं ॥ २४ ॥

[६५५] (देव अग्रियः वायो) कान्तिमान् तथा देवताओंमें अग्रणी वायो ! (सः त्वं) वह तू (मनसा मन्दानः) स्वयं मनसे प्रसन्न होता हुआ (नः) हमारे लिए (वाजान् अपः धियः कृधि) अन्न, पानी तथा बुद्धिको प्रदान कर ॥ २५ ॥

[२७]

[६५६] (उक्थे अध्वरे) इस प्रशंसनीय यज्ञमें (अग्निः पुरोहितः ग्रावाणः बर्हिः) अग्नि, पुरोहित, सोम कूटनेके पत्थर और आसन आदि सबकुछ तैयार है । अब मैं (ऋचा) वेदमंत्रोंके द्वारा (मरुतः ब्रह्मणस्पतिं देवान्) मरुत्, ब्रह्मणस्पति तथा अन्य देव और (वरेण्यं अवः) चाहने योग्य संरक्षणको (यामि) मांगता हूँ ॥ १ ॥

[६५७] हे अग्ने ! तू हमें (पशुं) पशुको (पृथिवीं) भूमि (वनस्पतीन्) उत्तम वनस्पति (उषासानक्तं) उत्तम प्रातःकाल और उत्तम रात्री तथा (ओषधीः) उत्तम औषधियां (आ गासि) प्रदान कर । हे (विश्ववेदसः विश्वे वसवः) सब पदार्थोंको जाननेवाले सभी वसुगण ! (न धीनां प्र अवितारः भूत) तुम हमारी बुद्धियोंकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेवाले होओ ॥ २ ॥

[६५८] (नः पूर्व्यः अध्वरः) हमारा यह श्रेष्ठ यज्ञ (अग्ना) अग्निके पास तथा (आदित्येषु) आदित्य (धृतव्रते वरुणे) व्रतोंको धारण करनेवाले वरुण और (विश्वभानुषु मरुत्सु) सर्वत्र व्याप्त तेजवाले मरुतोंके पास तथा (देवेषु) अन्य देवोंके पास (प्र सु एतु) उत्तम रीतिसे जाए ॥ ३ ॥

भावार्थ— वायुदेव अपने महत्त्वसे सर्वत्र व्याप्त हैं । जगके प्रत्येक कण कणमें वायु व्याप्त हो रहा है ॥ २४ ॥

हे वायो ! प्रसन्न होता हुआ तू हमें अन्न, पानी और उत्तम बुद्धिको प्रदान कर । मनुष्योंको भोजनके लिए उत्तम अन्न, पीनेके लिए उत्तम पानी और अनेक कर्म करनेके लिए उत्तम बुद्धि चाहिए ॥ २५ ॥

इस प्रशंसनीय यज्ञको पूर्ण करनेके लिए सभी सामग्रियां तैयार हैं, अतः अब मैं सभी देवोंको बुलाकर उनसे मैं संरक्षणकी प्रार्थना करता हूं ॥ १ ॥

अग्नि हमें पशु, जमीन, उत्तम वनस्पति और औषधी आदि प्रदान करे, तथा वसु हमें उत्तम बुद्धि प्रदान करें, ताकि हम अग्निसे प्राप्त ऐश्वर्यका सदुपयोग कर सकें और दिन और रात उत्तम रीतिसे बिता सकें ॥ २ ॥

हमारा यज्ञ अग्नि, आदित्य, वरुण तथा तेजस्वी मरुत् एवं अन्य देवोंको प्रसन्न करनेके लिए उनके पास पहुंचे ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus [illegible]mandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'संसारके पुस्तकालयमें ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रंथ है'। संसारका ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो ऋग्वेदमें न हो। दार्शनिक, भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांसारिक आदि सभी विषयोंका समावेश ऋग्वेदमें है। अतः—

यदि आप जानना चाहते हैं

कि

(१) ऋग्वैदिक दार्शनिकता क्या है ?
(२) ऋग्वैदिक समाजशास्त्र क्या है ?
(३) ऋग्वैदिक भौतिकशास्त्र कैसा है ?
(४) ऋग्वैदिक अध्यात्मविद्या क्या है ?
(५) ऋग्वेदका सारांश क्या है ?

तो अवश्य ग्राहक बनिये—

म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर कृत

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(चार भागोंमें)

प्रकाशन कार्य आरंभ हो गया है। मंत्र, अर्थ, भावार्थ तथा हर मण्डलके अन्तमें उस मंडल का सारांश एवं कठिनस्थलोंका स्पष्टीकरण सभी कुछ पठनीय होगा। साइज- डबल क्राऊन ८ पेजी सुन्दर कागज, पृष्ठ संख्या २५०० से ज्यादा, मूल्य मात्र ३०) रु. प्रत्येक भाग, पर—

(१) जो पेशगी धन भेज कर इस ग्रंथके ग्राहक होंगे, उन्हें केवल १००) में चारों भाग मिल सकेंगे।

(२) जो ग्राहक चारों भाग एक साथ खरीदेंगे, उन्हें इस ग्रंथके कुल मूल्य १००) रु. पर २०% कमीशन दिया जाएगा।

विशेष विवरणके लिए लिखें—

व्यवस्थापक—
स्वाध्याय-मण्डल पारडी,
पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. वलसार]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातव[illegible]र, भारत मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल, पारडी' [जि. वलसार]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu